

अंक : 92

(जनवरी-मार्च, 2001)

राजभाषा भारती



सत्यमेव जयते

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

राजभाषा भारती

वर्ष : 23

अंक : 92

मार्च, 2001

निःशुल्क वितरण के लिए

संपादकीय

राजभाषा भारती का जनवरी-मार्च, 2001 अंक अपने सभी पाठकों को प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। विभाग का सदैव यह प्रयास रहा है कि राजभाषा भारती में अर्वाचीन और अद्यतन विषयों पर सामग्री संकलित की जाए। वर्ष 2000 के दौरान प्रकाशित राजभाषा भारती के अंकों पर हमें अपने पाठकों से प्रतिक्रियाएं और सुझाव प्राप्त होते रहे हैं। उनके सुझावों से निश्चित ही हमारा उत्साह-वर्धन हुआ है।

प्रस्तुत अंक में अन्य विषयों पर लेखों के अलावा ऐसे अप्रवासी भारतीयों पर विशिष्ट लेख संकलित किए गए हैं जिन्होंने साहित्य, विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, विधि, जनसंचार, कंप्यूटर और राजनीति आदि जैसे विविध क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की है और भारत का नाम रोशन किया है।

पत्रिका में अप्रवासी भारतीयों के संबंध में गठित उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष डा. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी द्वारा आयोजित पत्रकार सम्मेलन में दिए गए भाषण का समावेश किया गया है, जिसमें उन्होंने अप्रवासी भारतीयों से संबंधित कुछ ऐसे विशिष्ट ऐतिहासिक पहलुओं और उनके आधुनिक, प्रगतिशील तथा संवेदनशील समुदाय में परिणत हो जाने के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं। डा. सिंघवी पिछले 40 वर्षों से विदेशों में रह रहे भारतीयों की समस्याओं को दूर करने में सर्वदा प्रयत्नशील रहे हैं। इस दिशा में फ्रीमांट कैलीफोर्निया में बसे डा. श्याम नारायण शुक्ल का लेख "अमेरिका में भारतीय मूल के कुछ शीर्षस्थ वैज्ञानिक एवं अभियंता" अत्यधिक सूचनाप्रद और ज्ञानवर्धक है। लेख में डा. हरविंद खुराना, डा. थामस कैलथ, डा. सतीश तिवारी, डा. हरेश शाह और डा. अनिल चोपड़ा जैसे सुप्रसिद्ध अप्रवासी

भारतीयों के विषय में अद्वितीय जानकारी मिलती है। हिंदी के जाने-माने कथाकार डा. सुरेन्द्र अरोड़ा जो पिछले दिनों लंदन हाई कमीशन में हिंदी एवं सांस्कृतिक अताशे के पद पर कार्यरत थे, का लेख "इंग्लैंड में प्रवासी भारतीय" अत्यधिक रोचक और मार्मिक है। लेख में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि भले ही अपने देश को छोड़कर व्यक्ति परदेस में बसकर खुशहाली प्राप्त कर लें परन्तु फिर भी उन्हें अपने वतन की मिट्टी रह-रह कर याद आती है।

जिन अन्य लेखों को इस अंक में सम्मिलित किया गया है उनमें वेद प्रकाश अरोड़ा का लेख "भारतीय प्रवासी-आशाएं और अपेक्षाएं", डा. शशि तिवारी का लेख "अमेरिका में कुछ विशिष्ट प्रवासी", डा. अमर सिंह वधान का लेख "कंप्यूटर प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि" से निश्चित ही सुधी पाठकों का ज्ञान-वर्धन होगा। अन्य लेखों में विभाग के पूर्व सचिव श्री चंद्रधर त्रिपाठी का लेख "राजभाषा : स्थिति एवं अपेक्षाएं", डा. परमानंद पांचाल का लेख "राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास" तथा डा. राजकुमारी शर्मा "राज" का लेख "रामचरित मानस में तांत्रिक संकेत-भाग-1" आदि रोचक और प्रेरणादायक हैं जिससे पाठक अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

हमारा विश्वास है कि पाठकों से हमें सुझाव और प्रतिक्रियाएं मिलती रहेंगी ताकि हम राजभाषा भारती के आगामी अंकों को और अधिक पठनीय, उपयोगी और ज्ञानवर्धक बनाने में सक्षम हो सकें।

उप संपादक :

सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा

दूरभाष : 4698054

संपादक :

विजय पी. गोयल

दूरभाष : 4617807

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

पत्र-व्यवहार का पता :

संपादक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन (दूसरा तल) खान मार्किट, नई दिल्ली-110003

राजभाषा भारती

अंक-92 (जनवरी-मार्च, 2001)

विषय-सूची

क्रम सं.	लेख	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	अनिवासी भारतीयों के संबंध में गठित उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष डा. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी का उद्घाटन भाषण	डा. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी	1
2.	अमेरिका में भारतीय मूल के कुछ शीर्षस्थ वैज्ञानिक एवं अभियंता	डा. श्याम नारायण शुक्ल	6
3.	अमेरिका में विश्व प्रसिद्ध भारतीय सांख्यिकी विज्ञ प्रो. सी.आर. राव	प्रो. भूदेव शर्मा	13
4.	अमेरिका में कुछ विशिष्ट अप्रवासी भारतीय	डा. शशि तिवारी	17
5.	इंग्लैंड में अप्रवासी भारतीय	डा. सुरेन्द्र अरोड़ा	21
6.	भारतीय प्रवासी-आशाएं और अपेक्षाएं	वेद प्रकाश अरोड़ा	27
7.	कुछ जाने माने अप्रवासी भारतीय		34
	1. डा. हर्ब धालीवाल	} भारतीय हाई कमीशन, ओटावा के सौजन्य से	
	2. डा. उज्जल दोसांझ (प्रीमियर ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया)		
	3. आयरस बारेटो		भारतीय दूतावास, कराकस के सौजन्य से
8.	विकसित देशों में उभरता जातीय विद्वेष	हरिकृष्ण निगम	37
9.	कंप्यूटर प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि	डा. अमर सिंह वधान	41
10.	रामचरित मानस में तांत्रिक संकेत-1	डा. राजकुमारी शर्मा "राज"	45
11.	राजभाषा : स्थिति एवं अपेक्षाएं	चंद्रधर त्रिपाठी	55
12.	राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास	डा. परमानंद पांचाल	67
13.	लोकमंगल के प्रतीक : आदि देव भगवान शिव	कुलदीप कुमार	73
14.	तकनीकी शिक्षा का माध्यम और भारतीय भाषाएं	विश्वम्भर प्रसाद "गुप्त बंधु"	77
15.	राष्ट्रीय एकता के शिल्पकार-सरदार पटेल	नोतन लाल	86
16.	पर्यावरण	दिलचस्प	90

अनिवासी भारतीयों के संबंध में गठित उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष डा. लक्ष्मी मल्ल सिंहवी का उद्घाटन भाषण

15-09-2000 को आयोजित पत्रकार सम्मेलन

मित्रो,

अनिवासी भारतीयों के संबंध में गठित उच्च स्तरीय समिति की ओर से आपसे बात करते हुए मुझे आज बहुत प्रसन्नता हो रही है।

यह उच्च स्तरीय समिति प्रधानमंत्री महोदय के अनुमोदन से गठित की गई है और मुझे इसका अध्यक्ष बनने का गौरव प्राप्त हुआ है। समिति में मेरे अन्य सहयोगी श्री आर. एल. भाटिया, संसद सदस्य व पूर्व विदेश राज्य मंत्री, भारतीय विदेश सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी श्री जे. आर. हीरेमत, जिन्होंने भारतीय मूल के व्यक्तियों/अनिवासी भारतीयों से संबंधित विषयों पर बहुत कुछ लिखा है, श्री बालेश्वर अग्रवाल, महासचिव अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद्, नई दिल्ली और विदेश मंत्रालय के अपर सचिव (एन आर आई व पी वी) श्री जे. सी. शर्मा हैं। श्री शर्मा, समिति के सदस्य सचिव भी हैं।

समिति का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है और इसमें अनिवासी भारतीयों (भारतीय नागरिक) व भारतीय मूल के व्यक्तियों से संबंधित लगभग सभी मुद्दे शामिल हैं। समिति के विचारार्थ सौंपे गए विषयों की प्रति आपको दे दी गई है।

यह उच्च स्तरीय समिति गठित किए जाने से यह बात प्रकट होती है कि सरकार अनिवासी भारतीयों और मातृभूमि के साथ उनके संबंधों को बहुत महत्व देती है। सरकार और विदेशों में रहे भारतीय व्यक्ति, सांस्कृतिक व भावात्मक संबंधों को संवर्धित व सुदृढ़ करना चाहते हैं। विदेशों में रहे भारतीयों की समस्याएं, आवश्यकताएं व आकांक्षाएं और भारत के सामाजिक-आर्थिक व प्रौद्योगिकीय विकास में योगदान करने की उनकी क्षमता, ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें सरकार विशेष प्राथमिकता दे रही है।

मैं विदेशों में रहे भारतीयों की समस्याओं को दूर करने की दिशा में लगभग 40 वर्ष के लंबे समय से स्वयं के जुड़े रहने का विवरण देकर आपको उबाना नहीं चाहता, परंतु मैं अनिवासी भारतीयों से संबंधित कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक पहलुओं और उनके एक आधुनिक, प्रगतिशील व संवेदनशील समुदाय में परिणत हो जाने के बारे में आपके साम्मुख अपने कुछ विचार रखना चाहता हूं।

भारतीय समुदाय, विश्व में शायद ऐसा सबसे पहला समुदाय है जो अपने देश से कहीं बाहर बसने गया। आज मैं जिस बात को रेखांकित करना चाहता हूँ वह यह है कि देशांतरण की अन्य उल्लेखनीय घटनाओं के विपरीत, भारतीय लोग विभिन्न देशों में किसी सशस्त्र हमले के परिणामस्वरूप नहीं बसे। भारतीय लोगों ने कोई उपनिवेश बनाने के प्रयास में देशांतरण नहीं किया। इस देशांतरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह संभवतः शांतिपूर्ण रीति से हुए देशांतरण का अकेला उदाहरण है। यही बात इसे, अन्य किसी देशांतरण से भिन्न बना देती है। भारतीय लोगों की विदेशों में बसने की प्रवृत्ति इतनी गहन है कि वह मिट नहीं सकती।

मैं आपका ध्यान इस बात की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ कि भारतीय लोग जिन देशों में जाकर बसे, वहाँ उन्होंने अपनी अलग छवि बनाई और अपनी परंपरा बरकरार रखी। वे चाहे सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद व टोबेगो, फिजी, मारीशस आदि जैसे देशों में करारबद्ध श्रमिकों के रूप में गए हों अथवा उत्तरी अमेरिका व कनाडा या यूरोप के कतिपय अन्य देशों में जाकर बसे हों, वे उन देशों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश में रच-बस गए हैं साथ ही साथ उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत बरकरार रखी और अपनी मातृभूमि से नाता बनाए रखा। वे इस बात के बहुत इच्छुक हैं कि उनकी भावी पीढ़ी भी इन संबंधों को बरकरार रखे और अपनी विरासत पर उसे सच्चा गर्व हो। अब मैं आपके सम्मुख कुछ आंकड़े प्रस्तुत करना चाहूँगा। इनसे आप इस बारे में अनुमान लगा सकते हैं कि विभिन्न देशों में भारतीय लोगों की कितनी संख्या है। पहली बार हमने विभिन्न देशों में भारतीय लोगों (भारतीय नागरिकों व विदेशी नागरिकों सहित) की संख्या का व्यापक आकलन किया है। आपको इस संख्यात्मक डाटाबेस की एक प्रति दे दी गई है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि लगभग 53 देश ऐसे हैं जहाँ पर 9000 या इससे अधिक भारतीय समुदाय बसे हुए हैं। ऐसे 10 देश हैं जहाँ पर 5 लाख या इससे अधिक जनसंख्या भारतीय मूल के लोगों की है। इस प्रकार विदेशों में फैले हुए भारतीय लोगों की कुल अनुमानित संख्या लगभग 2 करोड़ (20 मिलियन) है। इस संख्या के चलते, इन देशों के साथ भारत के संबंधों पर इन समुदायों के वहाँ होने का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

विदेश में बसे भारतीय लोगों के हृदय में अपनी मातृभूमि के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है। हमारे कई महान राष्ट्रीय नेता अनिवासी भारतीय थे हालांकि इस शब्द "अनिवासी भारतीय" की उत्पत्ति हाल ही में हुई है। दादाभाई नौरोजी 1855 में अनिवासी भारतीय बन गए थे। स्वयं महात्मा गांधी भी कई वर्षों तक अनिवासी भारतीय रहे। मैं जिस बात पर बल देना चाहता हूँ वह यह है कि भारतीय लोगों ने विदेश में, चाहे जहाँ भी हों, अपने परिश्रम, धैर्य, शांतिपूर्ण व अनाक्रामक जीवनशैली और सबसे महत्वपूर्ण बात कि परिवर्तन (नवीनता) लाने की अपनी निःसंशय क्षमता के बल पर अपने लिए सुरक्षित स्थान बना लिया है। इसका परिणाम यह है कि वे जिस देश में रह रहे हैं उसके लिए भी और भारत के लिए भी विशेष महत्वपूर्ण हो गए हैं। जैसा कि कारगिल युद्ध में और हमारे परमाणु परीक्षणों के बाद देखा गया, भारतीय समुदाय हमारे दृष्टिकोण को समझाने तथा जनमत को अपने पक्ष में करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसीलिए मैंने इस

परिवर्ती शब्द 'एन आर आई' को "नेशनल रिज़र्व ऑफ इण्डिया" (भारत की राष्ट्रीय निधि) के रूप में पुनः परिभाषित किया है।

खाड़ी में बसे अनिवासी भारतीयों के बारे में भी मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। खाड़ी में रहने वाले ऐसे भारतीय जो भारत में अपने-अपने घरों से गृहराई से जुड़े हैं, आज भी भारत में प्रेषणों तथा निवेशों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हमने कोचीन में प्रथम निजी हवाई अड्डे (प्राइवेट एयरपोर्ट) जैसी परियोजनाओं में अनिवासी भारतीयों द्वारा निभाई गई भूमिका और पुनरुत्थान भारत बंधपत्रों में उनका योगदान देखा है। समिति का विचार है कि इनकी समस्याओं का अध्ययन किया जाए और समुचित सिफारिशों की जाएं।

हाल ही में हुए चुनावों में स्पष्ट बहुमत वाली स्थायी सरकार के आने से विदेश में बसे भारतीयों के मन में आशावाद और नया उत्साह जागा है। विदेशों में बसे भारतीय, प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का अत्यंत सम्मान करते हैं और उनके बहुत प्रशंसक हैं। अतः यह बड़ा ही सुअवसर है कि भारत और विदेशों में बसे उन भारतीयों के बीच सुदृढ़ तथा परस्पर लाभप्रद संबंध विकसित करने के लिए मिलकर प्रयास शुरू किए जाएं जिनकी आय कुल मिलाकर लगभग 3000 बिलियन (3 अरब) अमरीकी डॉलर है, जो हमारे सकल घरेलू उत्पाद के तुल्य है। दूसरी ओर एक अरब की जनसंख्या वाला तथा प्राचीन सभ्यता वाला भारत देश आज एक ऐसे आधुनिक व गतिशील देश के रूप में उभर रहा है। जिसके पास योग्य मानव संसाधन जनशक्ति का अथाह भण्डार है। अतः मैं समझता हूँ कि भारत तथा विदेशों में बसे भारतीय पूरी तरह से एक दूसरे के पूरक हैं।

अपने राष्ट्रीय हित को बढ़ावा देने के लिए विदेशों में बसे भारतीयों की इस संभाव्यता का लाभ उठाने हेतु तथा इसकी चिंताओं, आकांक्षाओं और समस्याओं पर विचार करने हेतु यह अनिवार्य है कि एक सुनिश्चित नीति तैयार की जाए, देश के लिए विशिष्ट योजनाएं बनाई जाएं और क्रियान्वयन के लिए एक समर्पित संगठनात्मक ढांचा तैयार किया जाए। अतः सरकार ने यह समिति गठित की है, जिसके विचारार्थ विषय बहुत व्यापक हैं। यह समिति अनिवासी भारतीयों और भारतीय मूल के व्यक्तियों की स्थिति की समीक्षा करने वाली, उनकी समस्याओं का अध्ययन करने और सिफारिशें करने वाली, विदेश में बसे भारतीयों पर एक उच्चस्तरीय समिति है।

आशा की जाती है कि यह उच्च स्तरीय समिति विदेश मंत्री को छह माह में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगी। समिति एक प्रारम्भिक बैठक पहले ही आयोजित कर चुकी है और इस बात पर विचार कर चुकी है कि वह सौंपे गए इस वृहत् कार्य को करने के लिए कौन-सा बेहतरीन तरीका अपनाए। हमने पहली बार एक व्यापक डाटाबेस चालू करने का निर्णय लिया है। इसमें हर क्षेत्र में सफल उद्यमियों, विशेषज्ञों और प्रसिद्ध अनिवासी भारतीयों और भारतीय मूल के व्यक्तियों के ब्यौरे दिए जाएंगे। उदारहणार्थ इसमें संभवतः हर क्षेत्र में कार्यरत सर्वोपरि 200 व्यक्तियों की सूची

व उनके जीवन-वृत्त दिए जाएंगे। हो सकता है इसमें हर देश में अनिवास भारतीयों-भारतीय मूल के व्यक्तियों द्वारा चलाई जा रही शीर्ष 50 कम्पनियों की सूची भी दी जाए। डाटाबेस में अमरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया तथा युनाइटेड किंगडम जैसे देशों से इस तरह के विशिष्ट व्यक्तियों की व्यापक सूची मुहैया करवाई जाएगी। इसमें उन महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठनों, शिक्षा-संस्थानों, अनुसंधान केन्द्रों आदि की डायरेक्टरी भी होगी जिनके कार्यों का केन्द्र बिन्दु भारत हो। यह भी आशा की जाएगी कि विभिन्न देशों में सभी भारतीय सामुदायिक संगठनों, भारत के राष्ट्रीय समाचारपत्रों और मीडिया की सूची के साथ-साथ इसमें भारत से संबंधित सभी वेब-साइटों (web sites) की सूची भी हो। जो दूसरा निर्णय हमने लिया वह था, महत्वपूर्ण विषयों पर गहन और विस्तृत अध्ययन करवाने के लिए उप-समूहों का गठन करना। ये विषय निम्नलिखित हैं :—

- (i) अप्रवासी भारतीय/पी.आई.ओ. से संबंधित संवैधानिक और विधिक उपबंध
- (ii) नागरिकता और राष्ट्रीयता से संबंधित मुद्दे
- (iii) शिक्षा
- (iv) संस्कृति
- (v) पर्यटन
- (vi) विदेशों में भारतीय मजदूरों की कौंसुल संबंधी समस्याएं
- (vii) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
- (viii) सूचना प्रौद्योगिक और अन्य उच्च-प्रौद्योगिक वाले क्षेत्र
- (ix) सुरक्षा से संबंधित मुद्दे
- (x) व्यापार और निवेश
- (xi) सम्मान और पुरस्कार
- (xii) तुलनात्मक डायस्पोरिक अध्ययन

यह सूची उदाहरण मात्र है। सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए तंत्र (मैकेनिज्म) से संबंधित होगा। हम सरकार से केन्द्र में एक निष्कटक संगठनात्मक मॉडल की सिफारिश करना चाहेंगे तथा ऐसे ही संगठनात्मक मॉडल राज्य स्तर पर भी तैयार किए जा सकते हैं जिससे कि समुचित प्रयासों को अधिक प्रभावी किया जा सकेगा।

हम इस संबंध में न केवल विदेशों में स्थित भारतीय समुदायों के प्रमुख व्यक्तियों से बल्कि भारत में स्थित विभिन्न संस्थाओं/एजेंसियों/व्यक्तियों से भी व्यापक परामर्श किए जाने की

आवश्यकता के प्रति पूर्णतः जागरूक हैं। तभी हम अपने कार्य के प्रति न्याय कर सकते हैं। बुद्धिजीवी-वर्ग तथा आम जनता के बीच समिति द्वारा किए जा रहे कार्यों के बारे में जागरूकता पैदा किए जाने की भी उतनी ही आवश्यकता है। हम व्यक्तियों, व्यावसायिक निकायों, शिक्षा और अनुसंधान संस्थाओं, राजनैतिक नेताओं और मीडिया तथा इतर क्षेत्रों के राय देने वालों (opinion makers) के दिशानिर्देशों एवं सुझावों का स्वागत करते हैं। समिति शीघ्र ही अपनी वेब-साइट खोलेगी जिससे विदेशों में स्थित भारतीय समुदायों के विभिन्न वर्गों और भारत में संबंधित व्यक्तियों और संस्थाओं से व्यापक और गहन आदान-प्रदान किया जा सके।

समिति के गठन की घोषणा का नेताओं द्वारा गर्म जोशी से स्वागत किया गया। वस्तुतः हाल ही में जब मैं लंदन में था भारतीय संघों और शैक्षिक संस्थाओं ने समिति के कार्य में हर तरह की सहायता करने का प्रस्ताव किया और उन्होंने मांग की कि समिति के साथ सीधे आदान-प्रदान करने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए। समिति को विभिन्न देशों का दौरा करने के लिए निमंत्रण पहले से ही आने शुरू हो गए हैं। समिति के लिए विशेष समारोहों और सेमिनारों का आयोजन करने के प्रस्ताव भी आ रहे हैं ताकि इसके कार्यों को परस्पर क्रियाकलाप के रूप में आगे बढ़ाया जा सके। समिति, समय और संसाधनों की सीमा के अंतर्गत, कम से कम उन देशों का दौरा करने का प्रयास करेगी जहां भारतीय समुदाय काफी संख्या में है। इससे समिति भारतविदों, व्यवसायियों, शिक्षा से जुड़े लोगों और इंडियन डायसपोरिक मीडिया के अनुभवों और विशेषज्ञता का लाभ उठा सकेगी।

आपको यहां आमंत्रित करने का प्रयोजन इन महत्वपूर्ण मुद्दों पर जागरूकता पैदा करना और विदेशों में रहने वाले हमारे भाइयों और बहिनों तथा उनकी संतानों के सरोकारों और जरूरतों का समाधान करने में आपकी भागीदारी और समर्थन की अपेक्षा करना है। आपके प्रश्नों का उत्तर देकर हमें प्रसन्नता होगी।

अमेरिका में भारतीय मूल के कुछ शीर्षस्थ वैज्ञानिक एवं अभियंता



—डॉ० श्याम नारायण शुक्ल

[डॉ० श्याम नारायण शुक्ल का जन्म बिलासपुर (म०प्र०) के तुलसी नामक ग्राम में हुआ। 1997 में सिविल इंजीनियरिंग में बी०ई० (आनर्स) की डिग्री प्राप्त की। उन्हें 1962 में कनाडा के न्यू ब्रंसविक विश्वविद्यालय से एम०एस०सी० (इंजीनियरिंग) की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिली और इस पढ़ाई की समाप्ति के पश्चात् अमरीका के ओहायो स्टेट विश्वविद्यालय में रिसर्च एसोसिएट के पद के साथ पी०एच०डी० के लिए प्रवेश मिल गया। सम्प्रति डॉ० शुक्ल कैलीफोर्निया के फ्रीमांड नगर में रह रहे हैं और कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय की एक लेबोरेटरी में प्रोजेक्ट मैनेजर के पद पर कार्यरत हैं। डॉ० शुक्ल ने अपने विषय के अलावा भारतीय संस्कृति और दर्शन से सम्बद्ध रचनात्मक कार्य भी किए हैं।]

विज्ञान और अभियांत्रकी के अधिकांश विद्यार्थियों को जो विदेशों में उच्च शिक्षा के बाद देश-सेवा की भावना से भारत लौटते हैं, अनेक प्रकार की कुंठाओं का सामना करना पड़ता है। उसका कारण है भारत में कई प्रकार के रूढ़िवादी नियम। सरकारी नौकरियों में ज्येष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति देना और किसी भी पद के लिए—चाहे वह उसी संस्था में हो या उसके बाहर—'थ्रू प्रॉपर चैनल' ही आवेदन भेजने का नियम सबसे अधिक घातक है। 'थ्रू प्रॉपर चैनल' का नियम अंग्रेजों ने शायद उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय कर्मचारियों को अपने वश में रखने के लिए बनाया था। ऐसे नियम न तो कर्मचारी के हित में हैं और न देश के। ऐसा नियम किसी भी स्वतंत्र देश में नहीं है—यहां तक कि इंग्लैंड में भी नहीं। जब कर्मचारी को अपनी योग्यता के अनुरूप बढ़ने के लिए स्वतंत्र वातावरण मिलता है तो उसकी योग्यता का लाभ अंततः देश को ही मिलता है। इन नियमों के सिवाय भारत में भाई-भतीजावाद, प्रांतीयता, जातीयता और राजनैतिक खींचतान भी सर्वसाधारण कर्मचारी की उन्नति में बाधक सिद्ध होते हैं।

शायद इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'काउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च' की स्थापना करते समय उसके अंतर्गत शोध संस्थानों के निदेशकों को पर्याप्त अधिकार का प्रावधान रखा। परन्तु अधिकांश निदेशकों ने उसका भरपूर दुरुपयोग किया। वहां भी प्रांतीयता और भाई-भतीजावाद का बोलबाला रहा। कुछ निदेशक संस्था का नाम ऊंचा करने के बदले अपना स्वयं का नाम करने में अपनी सारी ऊर्जा खर्च करते हैं। वहां कर्मचारी को अपनी पदोन्नति के लिए अपने शोध से अधिक, ऊपर के अधिकारी को

प्रसन्न रखना आवश्यक है। इसीलिए उन संस्थानों में प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ों रुपयों के बजट के बाद भी शोध-पत्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नहीं होते।

सन् 1950 के दशक में ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च से सवेतन छुट्टी लेकर श्री जोसफ पी एच०डी० की डिग्री के लिए अमेरिका गए। जब वे डॉ० जोसफ वन कर भारत वापस लौटे तब उन्हें कोई पदोन्नति नहीं दी गई। कई लोगों को जो पी. एच. डी. नहीं थे सीनियरिटी के आधार पर पदोन्नति दी गई। जब वे किसी बाहर के उच्च पद के लिए आवेदन करना चाहते तो उनका आवेदन आगे बढ़ाया नहीं जाता था—इसलिए कि उनके ऊपर संस्था का कर्ज था और उन्होंने बांड भरा था कि वे कुछ वर्ष तक वहां कार्य करेंगे। उनके लेक्चरर के वेतन का बहुत बड़ा अंश कर्ज के नाम से कट जाता था और शेष राशि से जीवन यापन मुश्किल से होता था। कुंठा के कारण उन्होंने आत्महत्या कर ली। तब से यह नियम बना कि प्रत्येक कर्मचारी वर्ष में तीन आवेदन पत्र बाहर भेज सकता है।

ठीक इसके विपरीत पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में, विशेषकर विश्वविद्यालयों और कुछ स्वतंत्र शोध संस्थानों में, वे ही कुंठित भारतीय वैज्ञानिक-इंजीनियर भारत से वापस लौटकर वहां के उन्मुक्त वातावरण में फलते-फूलते हैं और विज्ञान के क्षेत्र में अपना, अपनी संस्था का और भारत का नाम ऊंचा करते हैं। यहां हम वैसे ही कुछ वैज्ञानिकों की जीवनियों की झांकी प्रस्तुत करेंगे।

डॉ० हरगोबिन्द खुराना

डॉ० हरगोबिन्द खुराना का जन्म पश्चिम पंजाब के एक छोटे से गांव रायपुर में हुआ, जो अब पाकिस्तान में है। उनके जन्म की तिथि निश्चय नहीं है परन्तु उनके प्रमाण पत्रों के अनुसार वे 9 जनवरी, 1922 को पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम गणपतराय खुराना और माता का नाम कृष्णा देवी था। वे एक बहिन और चार भाइयों में सबसे छोटे थे। उनके पिता गांव के पटवारी थे।

यद्यपि उनके पिता बहुत ही साधारण परिस्थिति के थे और अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे उन्होंने अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने का निश्चय किया। रायपुर ग्राम की 100 की जनसंख्या में से केवल उनका ही परिवार शिक्षित था।

हरगोबिन्द खुराना ने प्राइमरी शिक्षा गांव की पाठशाला में ली जिसकी कक्षाएं ग्राम के एक नीम के वृक्ष के नीचे लगती थीं। उन्होंने मुलतान के डी०ए०वी० हाई स्कूल से मैट्रिक पास किया जो अब पाकिस्तान में है। वहां उनके एक शिक्षक थे, रतनलाल जिनके व्यक्तित्व से वे बड़े प्रभावित हुए। तत्पश्चात् शासकीय छात्रवृत्ति प्राप्त करके उन्होंने लाहौर के पंजाब विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और वहां से सन् 1943 में बी०एस०सी० और 1945 में एम०एस०सी० (आनर्स) की उपाधियां प्राप्त कीं। पंजाब विश्वविद्यालय में उनके एक प्राध्यापक थे—महानसिंह जिन्होंने युवक विद्यार्थी हर गोबिन्द को शोध कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। एम०एस०सी० में उनका विषय रसायन शास्त्र था।

सन् 1945 में ही भारत शासन के फेलोशिप पर उन्हें इंग्लैंड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। उन्होंने लिवरपूल विश्वविद्यालय से 1948 में पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने जूरिख (स्विट्जरलैंड) के एक प्रसिद्ध इंस्टीट्यूट में एक वर्ष पोस्ट-डाक्टरल फेलो के रूप में शोध कार्य में बिताया।

☐ सन् 1949 में डॉ० खुराना भारत लौटे। स्वतंत्र भारत में देश-सेवा का संकल्प लेकर वे भारत गए, परन्तु एक वर्ष तक उन्हें कोई नौकरी नहीं मिली। वे हताश थे पर सन् 1950 में उन्हें कैंब्रिज विश्वविद्यालय में शोध के लिए एक फेलोशिप मिल गया। कैंब्रिज में उनके शोध का विषय था अमीनो एसिड से प्रोटीन बनाना।

सन् 1952 में डॉ० खुराना को वैंकूवर, कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया रिसर्च कौंसिल से रिसर्च कार्य के लिए आमंत्रण मिला। उनकी नियुक्ति जीव-रसायन विभाग के प्रमुख के रूप में हुई थी। सन् 1959 में उन्होंने अपने सहयोगी डॉ० जान मोफेट के साथ यह घोषित किया कि उन्होंने 'कोएनजाइम ए' का सफलतापूर्वक संश्लेषण कर लिया है। इससे उनकी ख्याति सारी दुनिया में फैल गई।

सन् 1960 में डॉ० खुराना विस्कान्सिन विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए और 1966 में उन्होंने अमेरिका की नागरिकता ले ली। विस्कान्सिन विश्वविद्यालय में अध्यापन और शोध करते हुए डॉ० खुराना ने अणु जीव-विज्ञान के क्षेत्र में शोध किया। इस शोधकार्य के लिए उन्हें दो अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ... नोबेल पुरस्कार मिला। सन् 1970 में प्रोफेसर खुराना ने एक प्रकार के 'जीन' की प्रयोगशाला में रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि जीन को कृत्रिम रूप से बनाया जा सकता है। प्रोफेसर खुराना के इस शोध कार्य ने एक नए शिल्प-विज्ञान को जन्म दिया जिसे बायो-टेक्नालाजी कहते हैं।

सन् 1971 से प्रोफेसर खुराना जगत्प्रसिद्ध शिक्षा संस्थान मैसेचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी (एम०आई०टी०) में अल्फ्रेड पी० स्लोन प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। सन् 1972 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि देकर सम्मानित किया। वे अमेरिका के नेशनल एकाडेमी ऑफ साइंस और इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी के फेलो हैं।

सन् 1952 में प्रोफेसर खुराना ने एक स्विस महिला एस्थर एलिजाबेथ सिब्लर से विवाह किया। इनकी दो पुत्रियां जूलिया एलिजाबेथ और एमिली एन तथा एक पुत्र देवराय हैं।

डॉ० खुराना को घूमने और संगीत सुनने का शौक है। वे आज भी 78 वर्ष की उम्र में, प्राध्यापन और शोध में कार्यरत हैं।

अमेरिका में और भी अनेक प्रतिभावान् वैज्ञानिक तथा अभियन्ता प्राध्यापन, शोध या हाई-टेक्नालॉजी के क्षेत्र में लगे हैं। यद्यपि उन्हें नोबेल पुरस्कार नहीं मिल सकता क्योंकि उन क्षेत्रों में उसका प्रावधान नहीं है, तथापि वे अपने क्षेत्रों में जगत्प्रसिद्ध हैं। हम यहां इंजीनियरिंग के क्षेत्र के कुछ प्रतिभावान् प्राध्यापकों के विषय में भी संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

डॉ० थामस कैलथ

डॉ० थामस कैलथ का जन्म केरल प्रांत में हुआ था। वे पूना इंजीनियरिंग कॉलेज के स्नातक हैं और उसके बाद उन्होंने अमेरिका जाकर वहां के सुप्रसिद्ध शिक्षा संस्थान एम०आई०टी० में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की। वहां से उन्हें 1959 में एम०ए० की उपाधि और उसके केवल दो वर्ष बाद एम०सी०डी० की उपाधि मिली। उन्हें ऑनरेरी डॉक्टरेट देकर सन् 1990 में स्वीडन के लिंकोपिंग विश्वविद्यालय ने, 1992 में स्कॉटलैंड के स्ट्रैचलाइड विश्वविद्यालय ने और 1999 में मैड्रिड (स्पेन) के कार्लोस (तृतीय) विश्वविद्यालय ने सम्मानित किया।

डॉ० कैलथ ने एम. आई. टी. से डॉक्टरेट प्राप्त करने के बाद सन् 1961-62 में जेट प्रोपेलसन लेबोरेटरी, पैसाडीना (कैलिफोर्निया) में कार्य करते हुए कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी में प्राध्यापन किया। सन् 1963 में उनकी नियुक्ति अमेरिका के एक और विश्वविख्यात स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में एसोसियेट प्रोफेसर के पद पर हुई। सन् 1968 में उनकी प्रोफेसर के पद पर पदोन्नति हुई और तब से वे वहां प्राध्यापन कर रहे हैं। वहां वे लोकप्रिय प्राध्यापक और सम्मानीय शोध कर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के इन्फर्मेशन सिस्टम्स लेबोरेटरी के निदेशक रहे हैं, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग के अध्यक्ष रहे हैं और सन् 1981 से 'हिताची अमेरिकन प्रोफेसर इन इंजीनियरिंग' के पद पर हैं।

प्रोफेसर कैलथ का शोध क्षेत्र बहुयामी रहा है। वे 1960 के दशक में इन्फर्मेशन थ्योरी एवं कम्प्यूनिकेशन पर, 1970 के दशक में लीनियर सिस्टम्स और कंट्रोल के क्षेत्र में, 1980 के दशक में वी०एल०एस०आई० (VLSI) डिजाइन और सेंसर और सिगनल प्रोसेसिंग के क्षेत्र में तथा 1990 के दशक में गणित में, विशेषकर स्टॉकेस्टिक प्रॉसेस, ऑपरेटर थ्योरी और लीनियर अल्जेब्रा पर कार्य कर रहे हैं। उसके साथ ही वे सेमी कंडक्टर और हाई स्पीड डिजिटल कम्प्यूनिकेशन्स पर भी शोध कर रहे हैं इन शोध कार्यों के साथ प्रोफेसर कैलथ ने सौ से भी अधिक पी.एच.डी. और पोस्ट डॉक्टरल विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन किया है।

वे अपने विषयों की अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक या सह-लेखक हैं। उन्हें अपने कई शोध पत्रों पर श्रेष्ठता के पुरस्कार मिले हैं।

डॉ० कैलथ आई०ई०ई०ई० तथा इंस्टीट्यूट ऑफ मैथेमैटिकल स्टैटिस्टिक्स के फेलो हैं। उन्हें गगेनहाइम और चर्चिल फेलोशिप भी मिले हैं। वे नेशनल एकाडेमी ऑफ इंजीनियरिंग अमेरिकन एकाडेमी ऑफ आर्ट्स एण्ड साइंस, थर्ड वर्ल्ड एकाडेमी ऑफ साइंसेज तथा इंडियन नेशनल एकाडेमी ऑफ इंजीनियरिंग के सदस्य हैं। उसके साथ ही वे तीन हाई-टेक कंपनियों के सह संस्थापक हैं।

डॉ० सतीश त्रिपाठी

डॉ० सतीश त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश में फैजाबाद जिले के पटना नामक गांव में 20 जनवरी, 1951 को हुआ। उनके पिता श्री राजेन्द्र नाथ त्रिपाठी (एम. ए. हिंदी) ने अपनी

जीविका एक हाई स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में प्रारंभ की और त्रिपुरा में हिंदी शिक्षा अधिकारी के रूप में सेवा निवृत्त हुए। उनकी माता श्रीमती गौरी देवी पांचवीं कक्षा तक पढ़ी थीं पर गणित में इतनी निष्णात थीं कि सतीश त्रिपाठी जी को वे उनके हाई स्कूल के गणित में भी सहायता करती थीं। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि उनके जीवन को संवारने में उनकी माता और दादी का बहुत बड़ा हाथ है।

डॉ० त्रिपाठी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबर्ट और यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में शिक्षा पाई। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो से ही कंप्यूटर साइंस में पी०एच०डी० की उपाधि पाई। सन् 1978 में उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ मेरीलैण्ड के कंप्यूटर साइंस डिपार्टमेंट में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यारंभ किया और दस वर्ष बाद 1988-95 के वर्षों में उस विभाग के अध्यक्ष रहे। मार्च 1997 में उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, रिवरसाइड में जान्सन प्रोफेसर ऑफ इंजीनियरिंग और इंजीनियरिंग कॉलेज के डीन के रूप में कार्य-भार संभाला। वे अमेरिका के एक बड़े विश्वविद्यालय में भारतीय मूल के सबसे कम उम्र के डीन हैं।

पिछले 20 वर्षों से डॉ० त्रिपाठी परफार्मेंस इवेलुएशन, कंप्यूटर नेटवर्क्स, रीयल टाइम सिस्टम्स एवं फॉल्ट टालरेंस के क्षेत्रों में सक्रिय रूप से शोध में व्यस्त रहे। अब तक उनके 150 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। नेट वर्किंग के क्षेत्र में उनके वर्तमान शोध विषय हैं—मोबिल कम्प्यूटिंग, ए०टी०ए० नेटवर्क्स एवं ऑपरेटिंग सिस्टम सपोर्ट फॉर मल्टीमीडिया इन्फर्मेंशन। अब तक उनके मार्ग दर्शन में 20 से भी अधिक लोग पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

डॉ० त्रिपाठी अनेक अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशनों में प्रोग्राम कमेटियों के अध्यक्ष रह चुके हैं व कई विशेष टेक्निकल पत्रिकाओं और पुस्तकों का संपादन कर चुके हैं। उनकी एक पुस्तक 'नेटवर्क मल्टीमीडिया सिस्टम्स' 1997 में छपी और बहुत लोकप्रिय हुई। डॉ० त्रिपाठी आई० ई० ई० और ए०ए०ए०एस० के फेलो हैं।

डॉ० त्रिपाठी की पत्नी श्रीमती कमलेश त्रिपाठी लखनऊ से हैं। उनके दो बेटे हैं : मनीष जो स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के स्नातक हैं और आशीष जो यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले में तृतीय वर्ष के विद्यार्थी हैं। डॉ० त्रिपाठी के दो भाई और चार बहनें हैं। उनके एक भाई लखनऊ मेडिकल कॉलेज में मेडीसीन के प्रोफेसर हैं और दूसरे फैजाबाद के एक बैंक में मैनेजर हैं। उनकी बहनें उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में रहती हैं।

डॉ० हरेश शाह :

डॉ० हरेश शाह सैन फ्रांसिस्को बे एरिया में स्थित विश्व प्रसिद्ध स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के सिविल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर व अध्यक्ष हैं। उन्होंने पूना इंजीनियरिंग कॉलेज से बी०ई० और स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से एम० एस० और पी० एच० डी० की उपाधियां प्राप्त कीं।

डॉ० शाह का जन्म 7 अगस्त, 1937 को गुजरात में हुआ और अमेरिका आने के बाद उनका विवाह जोन दर्सयान्त से हुआ। उनके दो पुत्र हैं हेमन्त और मिहिर जो यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया के स्नातक हैं।

डॉ० शाह सन् 1968 में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी से पी०एच०डी० करने के बाद से ही वहीं प्राध्यापन कर रहे हैं। अब तक उनके 150 से अधिक शोध पत्र और एक पुस्तक प्रकाशित हैं। भूकंप इंजीनियरिंग में वे विश्व के अग्रगण्य विशेषज्ञों में से हैं। इस क्षेत्र में वे यूनेस्को तथा अनेक देशों के शासनों के सलाहकार हैं। ये विविध संस्थानों के फेलो हैं।

डॉ० अनिल चोपड़ा :

डॉ० अनिल चोपड़ा भी सैन फ्रांसिस्को बे एरिया में स्थित एक दूसरे विश्व विख्यात विश्वविद्यालय, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले में सिविल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर हैं।

डॉ० चोपड़ा का जन्म 18 फरवरी, 1941 को पश्चिमी पंजाब में हुआ जो अब पाकिस्तान का भाग है। उनकी शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई जहां से उन्होंने सन् 1960 में बी०ई० की उपाधि सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करते हुए पाई। स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए वे यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले गए जहां से उन्होंने एम०एस० और पी०एच०डी० की उपाधियां प्राप्त कीं।

सन् 1966-67 में उन्होंने एक वर्ष के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर काम किया। उसके बाद से वे यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले में प्राध्यापन कर रहे हैं। वे वहां प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष रहे हैं। उनका क्षेत्र स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग है जिसमें वे भूकंप इंजीनियरिंग में विश्व के अग्रगण्य विशेषज्ञों में से हैं। वे अनेक प्रोफेशनल संस्थानों के सदस्य व फेलो हैं और 150 से भी अधिक शोध पत्रों के लेखक हैं। वे निजी कंपनियों और कई देशों के लिए परामर्शदाता हैं।

विश्वविद्यालयों के सिवाय भारतीय मूल के अनेक वैज्ञानिक और इंजीनियर कई निजी शोध शालाओं में कार्यरत हैं और कंप्यूटर के क्षेत्र में बड़ी-बड़ी कंपनियों के मालिक हैं। हाई-टेक के क्षेत्र में देशपांडे का नाम अग्रगण्य है, जो बहुत ही सफल व्यवसायी हैं और करोड़पति हैं। उन्होंने 'सिकामोर नेटवर्क्स' नामक कंपनी की स्थापना की और आज भारतवंशी अमेरिकी लोगों में सबसे धनी व्यक्ति हैं।

सैन फ्रैंसिस्को खाड़ी क्षेत्र में डॉ० सुहास पाटिल 'सिरस लाजिक' नामक एक बड़ी कंपनी के मालिक हैं। वे मूलतः महाराष्ट्र से हैं पर उनका बचपन जमशेदपुर में बीता जहां उनके पिता इंजीनियर थे। उन्होंने आई०आई०टी० खड़गपुर से इलेक्ट्रानिक्स में बी० टेक० की डिग्री और अमेरिका में एम०आई०टी० से एम०एस० और एस०सी०डी० की उपाधियां अर्जित कीं। अपनी कंपनी स्थापित करने से पहले वे एम०आई०टी० में प्राध्यापक भी रहे। उनकी कंपनी उच्च स्तर के चिप्स बनाती है जिनका उपयोग तीव्र गति वाले कंप्यूटर बनाने में होता है।

सैन फ्रैंसिस्को खाड़ी क्षेत्र के सिलीकान वैली में डॉ० प्रभू गोयल हैं जो आई०आई०टी० कानपुर के स्नातक हैं और जिन्होंने एम०आई०टी० से एस०एम० और एस०सी०डी० की उपाधियां प्राप्त कीं। उनकी कंपनी "कैडेन्स" को छः करोड़ डॉलर में एक दूसरी अमेरिकी कंपनी ने खरीद लिया। डॉ० गोयल ने उसमें से तीस लाख डॉलर भारत में गरीब और मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति के लिए अलग रख दिया। उन्होंने एक नई संस्था प्रारंभ की जिसका नाम है 'फाउंडेशन फॉर एक्सलेंस' और उसके निदेशक हैं—श्री वेंकटेश शुक्ल जो स्वयं एक कंपनी 'एत्री-पाथ' के मालिक हैं जो बिना कंप्यूटर के, केवल फोन की सहायता से, आपको इंटरनेट का उपयोग करने में सहायक होता है। श्री वेंकटेश शुक्ल, एम०ए०सी०टी० भोपाल से इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग के स्नातक हैं और अमेरिका के एम०आई०टी० से एम०बी०ए० हैं।

उसी क्षेत्र में एक और इंजीनियर हैं जिन्होंने 'एक्सलान' नामक कंपनी को बेचकर कई करोड़ डॉलर अर्जित किए। वे हैं श्री कंवल रेखी जो आई०आई०टी०, मुंबई के स्नातक हैं जिन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया से स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने आई०आई०टी०, मुंबई से यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले में आकर स्नातकोत्तर डिग्रियों के लिए अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए स्कॉलरशिप स्थापित किया है। उन्होंने फाउंडेशन फॉर एक्सलेंस को भी 30 लाख डॉलर दान देकर भारत में लड़कियों की उच्च शिक्षा के लिए स्कॉलरशिप की व्यवस्था की है।

उपर्युक्त वैज्ञानिकों/अभियंताओं के सिवाय अमेरिका में अनेक सफल भारतवंशी चिकित्सक, बायो टेक्नालाजिस्ट और सुनाम धन्य वैज्ञानिक हैं जिनके विषय में एक पुस्तक लिखी जा सकती है।

44949, कौंगार सर्कल, प्रोग्रामंट (कैलिफोर्निया), सी०ए० 94539 (यूएसए)

अमेरिका विश्व प्रसिद्ध भारतीय सांख्यिकी विज्ञ : प्रो. सी. आर. राव

—प्रो. भूदेव शर्मा

अमेरिका में भारतीय अच्छे व्यवसायों, व्यापार तथा धन्धों में हैं। भारतीय इंजीनियर, डाक्टर, शिक्षक, होटल मालिक तथा कम्प्यूटर विशेषज्ञ आपको वहां लगभग हर संस्थान एवं नगर में मिल जाएंगे। संख्या में लगभग 14 लाख होने पर भी उनका प्रभाव बहुत अच्छा है।

शिक्षा के क्षेत्र में पिछले कई दशकों से भारतीयों ने अच्छा स्थान बनाया है। शायद ही ऐसा कोई विश्वविद्यालय हो जिसमें भारतीय प्रध्यापक न हों। विशेष रूप से गणित-सांख्यिकी, इंजीनियरिंग, विज्ञान एवं कम्प्यूटर विभागों में उनका होना साधारण बात है। अध्यापन एवं शोध दोनों ही विधाओं में उनकी अच्छी छवि है।

गणित-सांख्यिकी में स्वर्गीय प्रो. आर. सी. बोस से वहां सब परिचित हैं। इनके अतिरिक्त प्रो. राय चौधरी (कोलम्बस), शांति स्वरूप गुप्ता (परड्यू), प्रो. जगदीश श्रीवास्तव (फोर्ट कालिंस), प्रो. थामस कैलथ (स्टैन फोर्ड) तथा प्रो. बालाकृष्णन (कैलीफोर्निया) से भी सभी परिचित हैं। एक बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति हैं प्रो. सी. आर. राव। उन्हें आज विश्व का सर्वश्रेष्ठ जीवित सांख्यिकी विज्ञ माना जाता है। उन्होंने अवकाश प्राप्त करने तक भारत में ही कार्य किया एवं देश को इस क्षेत्र में खूब प्रसिद्धि दिलाई। 1988 में 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने उन्हें नोबल पुरस्कार विजेता सी.बी. रमण, एस. चन्द्रशेखर एवं हरगोविंद खुराना तथा गणित में अद्भुत प्रतिभा के धनी श्री श्रीनिवास रामानुजन के साथ भारत के 10 सर्वश्रेष्ठ आधुनिक वैज्ञानिकों में रखा था।

राधाकृष्ण राव का जन्म 10 सितम्बर, 1920 को कर्नाटक के एक ग्राम हुवन्ना-हदगिली में हुआ। पिता श्री सी.डी. नायडु पुलिस इंस्पेक्टर थे। माता का नाम लक्ष्मीकान्तम्मा था। उनके माता-पिता के 10 सन्तान थीं—6 पुत्र एवं 4 पुत्रियां। आठवीं संतान होने के कारण उनका नाम भगवान कृष्ण के नाम पर रखा गया।

राधाकृष्ण मेधावी छात्र रहे। पिता के कई स्थानों पर रहने के कारण उनकी शिक्षा भी कई स्थानों पर हुई। हाई-स्कूल की परीक्षा विशाखापटनम् से तथा बी.ए. (आनर्स) एवं एम.ए. (गणित) आंध्र विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान लेकर किया। उनका सांख्यिकी के क्षेत्र में जाना संयोग कहा जा सकता है। वह कलकत्ता 'सैनिक सर्वे यूनिट' में अभ्यर्थी होकर गए थे। उसमें तो चयन नहीं हुआ परन्तु वहां 'भारतीय सांख्यिकी संस्थान' से सम्पर्क बन गया।

वहीं रह कर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से सांख्यिकी में एम.एससी. प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान लेकर किया। शोध कार्य 'भारतीय सांख्यिकी संस्थान' में ही आरम्भ कर दिया था, परन्तु बाद में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से 1948 में जगत प्रसिद्ध प्रो. आर. ए. फिशर, के निर्देशन में 'स्टैटिस्टिकल प्रोबलम्स ऑफ बायलोजिकल क्लासीफिकेशन' शोध ग्रंथ पर पी.एच.डी. किया। पश्चात् उनके प्रकाशित कार्य पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ही उन्होंने डी.एससी. की उपाधि भी 1965 में अर्जित की। उन्हें 23 विश्वविद्यालयों से D. Sc/D. Litt. की सम्मानार्थ उपाधियां प्राप्त हैं। यह सम्मानार्थ उपाधियां देने वाले विश्वविद्यालय, भारत, अमेरिका के अतिरिक्त ग्रीस, फिलिपाइन्स, फिनलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, पोलैण्ड, स्लोवेकिया, स्पेन, जर्मनी, कनाडा, ब्राजील देशों के हैं।

प्रो. राधाकृष्ण राव की प्रसिद्धि उनके शोधकार्य से है। उनके 400 से भी अधिक शोधपत्र तथा 14 पुस्तकें प्रकाशित हैं। 48 व्यक्तियों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों से उनके निर्देशन में अपना पी.एच.डी. का कार्य पूरा किया है। सांख्यिकी क्या कदाचित ही कोई ऐसी विद्या हो जहां प्रो. राव की अमित छाप न हो। मुख्य क्षेत्र है 'ऐस्टीमेशन थ्योरी', 'इन्फ्रेंस एण्ड लीनियर माडल्स', 'मल्टीवेरियेट अनालिसिस', कम्बिनेटोरियल डिजाइंस आफ एक्सपेरिमेण्ट्स, बायोमीट्री, मैथेमेटीकल जेनेटिक्स, जनरलाइज्ड इनवर्स आफ मैट्रीक्स, फन्क्शनल इक्वेशन्स, आदि। उनका नाम सांख्यिकी के स्थापन कर्ताओं में कार्ल पियरसन, फिशर, वाल्ड, क्रैमर, तथा होटलिंग के साथ लिया जाता है।

उनका पहला शोध-पत्र 1925 में, जब वह भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता में थे, आया। इसमें प्रकाशित उनकी प्रसिद्ध 'क्रैमर-राव इन्इक्वैलेटी' (Cramer-Rao Inequality) सांख्यिकी में ऐस्टीमेशन (Estimation) की आधार शिला है। उनके शोध-पत्रों में प्रकाशित बहुत से लेख आज सांख्यिकी की पाठ्य पुस्तकों में रहते हैं। इनमें से कुछ हैं—Cramer-Rao Inequality. Rao-Blackwell Theorem. Fisher-Rao Theorem. Rao's Score Statistics. Neyman Rao Test. Rao's Orthogonal Arrays. Hamming Rao Bound. Rao-Distance. Rao's Quadratic Entropy, Rao's MINQUE, Kagan-linnik-Rao Theorem, Lan-Rao-Shanbag Theorem, आदि। उनकी यह सामग्री इतने समय से पुस्तकों में प्रकाशित हो रही है, कि लगता है वह पिछली शताब्दी में रहे होंगे। इस के सम्बंध में भारत एवं अन्य देशों की कई रोचक घटनाएं हैं। एक घटना स्लोवेकिया की है। वह अपनी पत्नी, श्रीमती भार्गवी के साथ वहां एक कांफ्रेंस में गए थे। वह कुछ पता लगाने इधर-उधर गए तो पत्नी ने एक स्वयं-सेवक से पूछा कि क्या तूने प्रो. राव को देखा है? स्वयं-सेवाक ने आश्चर्य से पूछा, "क्या प्रो. राव जीवित हैं? हम तो उन्हें 19वीं सदी का मानते हैं"। ऐसी ही एक घटना भारत की भी है। पिछले वर्ष भारत सरकार में एक विज्ञप्ति निकाली जिसके अनुसार एक युवक वैज्ञानिक को उनकी 'स्मृति' में एक पुरस्कार देने की घोषणा की गई। बाद में यह पता लगने पर कि वह जीवित हैं, यह पुरस्कार उनके 'सम्मान' में कर दिया गया।

प्रो. राव एक कुशल एवं लोकप्रिय शिक्षक भी हैं। 1944 में अवकाश प्राप्त करने तक वह 'भारतीय सांख्यिकी संस्थान' में विभिन्न पदों पर रहे। इस बीच उन्हें विदेशों से कई बार लुभाने वाले प्रस्ताव मिले, परन्तु वह भारत छोड़कर नहीं गए। उनके द्वारा विकसित सांख्यिकी का पाठ्यक्रम लगभग प्रत्येक विश्वविद्यालय में अनुसरण किया जाता है। भारतीय सांख्यिकी संस्थान से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् वह पिट्सबर्ग-विश्वविद्यालय, अमेरिका में पहुंचे और 1988 से एक बहुत ही सम्मानित प्रोफेसरशिप—Eberly Family Chair पर पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी में आसीन हैं। कई अन्य विश्वविद्यालयों में वह आमंत्रित समय के लिए रहे हैं।

प्रो. राव कई शोध-पत्रिकाओं के सम्पादन से भी जुड़े हैं। सन् 1964 से कुछ वर्ष पहले तक वह भारत से प्रकाशित विश्व-प्रसिद्ध सांख्यिकी के शोध-जनरल 'संख्या', जिसकी प्रस्थापना प्रो. महालनबीस ने की थी, का सम्पादन करते रहे। इस दिशा में इस लेखक का भी उनसे सम्बंध रहा है। 'जनरल और कम्प्यूटोरिक्स इन्फोरमेशन एण्ड सिस्टम सांइसेज', जिसके प्रधान सम्पादन का कार्यभार मैं पिछले 25 वर्षों से उठाए हूँ, में प्रो. राव एक सम्पादक हैं। इस जनरल ने एक विशेष Volume प्रो. राव के 70 वर्ष पूरे होने पर प्रकाशित किया था। इस जनरल के अतिरिक्त लेखक को प्रो. राव के साथ एक संस्था 'FORUM FOR INTERDISCIPLINARY MATHEMATICS' में भी कार्य करने का सौभाग्य मिला है। यह जनरल मेरे दिल्ली विश्वविद्यालय के कार्यकाल में, मेरे तथा मेरे शोध-छात्रों के प्रयास से आरम्भ हुआ था। प्रो. राव 1982—84 में इसके अध्यक्ष रहे, जब मैं इसका मुख्य सचिव था। उनके अतिरिक्त इस संस्था के अध्यक्ष प्रो. महादेव दत्त (कलकत्ता), प्रो. जे. दास (खड़गपुर), प्रो. डी.के. राय चौधरी (कोलम्बस) प्रो. जगदीश श्रीवास्तव (फोर्ट कालिंस), प्रो. भूदेव शर्मा (न्यू आर्निन्स), प्रो. एम.एम. राव (रिवरसाईड) रहे हैं, तथा अब प्रो. सत्य मिश्र हैं। प्रो. राव जिन अन्य संस्थाओं के अध्यक्ष रहे हैं, वे हैं, Indian Econometric Society, International Biometry Society, Institute of Mathematical Statistics (USA), International Statistical Institute (Netherlands).

प्रो. राव को बहुत से सम्मान प्राप्त हैं। वह भारत में पद्म-भूषण सम्मान से अलंकृत हैं। Royal Society (UK), Indian National Science Academy, Indian Academy of Science, तथा Natural Academy of Sciences, (USA) के वह निर्वाचित 'फैलो' हैं। शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार उन्हें 1962 में मिला था। इसके अतिरिक्त उन्हें रायल स्टेटिस्टिकल सोसायटी (यू.के.) का 'गार्ड रजत मैडल', अमेरिकन स्टेटिस्टिकल एसोशियेशन का 'एस.एस. बिल्क स्मारक मैडल' भी प्राप्त हैं। जिन प्रमुख संस्थाओं के वह सम्मानीय फैलो हैं, वह हैं—International Statistical Institute, Kings College (Cambridge), Biometry Society, Royal Statistical Society, (UK).

प्रो. राव ने अवकाश प्राप्त करने तक कितने ही प्रलोभनों को छोड़ भारत में सांख्यिकी की नींव दृढ़ की। देश भक्ति का एक अन्य उद्धरण भी समीचीन होगा। पण्डित नेहरू से शान्ति

स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्राप्त करने पर उन्होंने कहा था, "मान्यवर आपने जो पुरस्कार का धन मुझे दिया है, उसके लिए मैं आभारी हूँ। मेरे जैसे अल्प वेतन पाने वाले वैज्ञानिक के लिए पुरस्कार के इस मान का बहुत महत्व है। परन्तु इस समय चीन के अकारण आक्रमण के कारण देश की आवश्यकता एक वैज्ञानिक की व्यक्तिगत आवश्यकता से अधिक है। आदरणीय प्रधानमंत्री जी, मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप इस पुरस्कार की राशि को 'राष्ट्र रक्षा निधि' में मेरे योगदान स्वरूप स्वीकार कर लें।"

प्रो. राव का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखद है। श्रीमती भार्गवी से उनका विवाह, 1948 में कैम्ब्रिज से पी. एच. डी. करके लौटने पर हुआ। श्रीमती भार्गवी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए., मद्रास विश्वविद्यालय से बी.एड. तथा इलिनाय विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम.ए. की उपधियां ली हैं। वह कलकत्ता के बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ होम साइंस में अध्यापन भी करती थीं। उनकी दो संतान हैं—बेटी तेजस्वनी तथा बेटा वीरेन्द्र। दोनों का लालन-पालन कलकत्ता एवं दिल्ली में हुआ है। डा. तेजस्वनी अब स्टेट यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क (बफैलो) में न्यूट्रिशन की प्राध्यापिका हैं तथा वीरेन्द्र इंजीनियरिंग करके पिट्सबर्ग में कम्प्यूटर विशेषज्ञ हैं। तेजस्वनी बफैलो में एक नृत्य-विद्यालय भी चलाती हैं। प्रो. राव भी दिल्ली में कुचिपुड़ी डांस अकादमी के अध्यक्ष, 1970-71 तक रहे हैं।

प्रो. राव का बहुत ही सहृदय एवं रोचक व्यक्तित्व है। प्रसिद्धि के साथ सरलता उनकी विशेषता है। उनके मुख पर एक आकर्षक मुस्कान सदा छाई रहती है। उनके साथ बातें करने का अपना आनन्द है। विभिन्न देशों एवं व्यक्तियों के संस्करण वह बहुत चाव से सुनाते हैं। जब 1953 में वह पहली बार अमेरिका गए तो डिपार्टमेंटल स्टोर से कुछ सामान खरीद कर घर आए। वहां उन्होंने देखा कि गलती से 10 डालर कम लिए गए हैं। वह तुरन्त स्टोर पहुँचे। स्टोर कर्मचारी एवं प्रबन्धक आश्चर्यचकित थे। डा. राव का सरल उत्तर था, "मैं गणित का अध्यापक हूँ, इसमें हुई अशुद्धि को बताना मेरा कर्तव्य है"। स्टोर के मैनेजर ने उन्हें धन्यवाद दिया और उपहार में एक टाई दी जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। एक अन्य रोचक घटना भारत की है। उन्हें दिल्ली से पुनः प्रेषित एक पत्र मिला। उस पर पता लिखा था—डा. राव, स्टेटिस्टिक्स, दिल्ली। जब उन्होंने पत्र खोला तो पाया कि यह पत्र दिल्ली स्कूल आफ इकनोमिक्स के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. वी.के.आर.वी. राव का था। उन्होंने वह पत्र स्वयं मिलने पर प्रो. वी.के.आर.वी. राव को दिया। उनको याद है कि इस प्रकार एक अन्य 'राव' को अपने से अधिक प्रसिद्ध जान कर प्रो. वी.के.आर.वी. राव की क्या प्रतिक्रिया हुई थी।

विश्वभर के विश्वविद्यालय तथा संस्थाएं उनके सम्मान में अनेक गोष्ठियां करते रहते हैं। सांख्यिकी ने उनके जीवन दर्शन पर अमिट प्रभाव डाला है। प्रकृति एवं जीवन के नए सूत्रों को प्रकट करने में वह सांख्यिकी की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं।

गणित विभाग, जेचिंगर विश्वविद्यालय, न्यू मार्लिन्स

संपर्क : B 74, तर्शाशाला कालोनी, मेरठ-250004

फोन (0121) 600-074, c. mail bhudev-sharma c yahoo.com.

अमेरिका में विशिष्ट अप्रवासी भारतीय

—डा. शशि तिवारी

आज अनेक भारतीय अपनी अभूतपूर्व योग्यता, बौद्धिक क्षमता, कुशलता, निष्ठा और उद्योगशीलता के आधार पर भारत की भौगोलिक सीमाओं से बाहर निकल कर विभिन्न देशों में रहकर मानवता की सेवा के कार्य में संलग्न हैं। उन्होंने न केवल अपने-अपने क्षेत्र में अपने मौलिक योगदान से अपनी पहचान बनाई है, अपितु विदेशी समुदायों में भारतीय मनीषा को गौरवपूर्ण स्थान दिला कर भारतीय जन का मस्तक भी गर्व से ऊंचा किया है। साहित्य, विज्ञान, चिकित्सा, शिक्षा, व्यवसाय आदि विषयों से सम्बद्ध ऐसे विद्वानों में से दो का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अमेरिका में कार्यरत हैं।

प्रो. भूदेव शर्मा

मेधा, परिश्रम और लगन के द्वारा नीचे के सोपान से ऊपरी सोपान तक चढ़कर, अमेरिका में यश और सम्मान के साथ एक उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित होने वाले भूदेव शर्मा का जन्म 1938 में भारत के जिला बिजनौर के एक ग्राम में धनवान किन्तु धार्मिक परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में ही हुई, साथ ही माता-पिता से भारतीय धर्म और विचारधारा के आचरण और उनके प्रति आकर्षण के संस्कार भी प्राप्त हुए। मेरठ विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की और गणित विषय में एम. एससी. उपाधि के साथ विशेष योग्यता अर्जित की, पर साथ ही बाल्यकाल से उद्भूत रुचि के कारण संस्कृत, हिंदी और इंग्लिश के ख्यातिप्राप्त ग्रन्थों का पठन भी किया। विशेष तौर पर उल्लेख है कि उन्होंने महाभारत को आद्योपान्त पढ़ कर गीता के श्लोकों को शुद्ध उच्चारण के साथ कण्ठस्थ भी कर लिया।

भूदेव शर्मा की एक गणित प्राध्यापक के रूप में मेरठ के एक महाविद्यालय में बीस वर्ष की आयु में हुई प्रथम नियुक्ति उनकी मेधावी प्रतिभा और अपने विषय में गहरी पैठ का उदाहरण है। अनन्तर एक प्रसिद्ध गणितज्ञ की ख्याति की ओर बढ़ते हुए डा. शर्मा ने गणित विषय पर एक के बाद एक शोधपत्रों का लेखन और प्रकाशन किया। दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच. डी के साथ प्राध्यापनकार्य शोध की दिशा में समर्पण का द्योतक है। शोध के साथ पुस्तकों का लेखा, अध्यापन के साथ शोध निर्देशन, शोधपत्रिका के सम्पादन के साथ सम्मेलन में पत्रवाचन आदि अति महत्वपूर्ण शैक्षणिक कार्यों में सतत संपृक्त रहकर आपने अपने क्षेत्र में एक विशेष पहचान बनाई। 1976 में डा. शर्मा अमेरिका की कोलोराडा स्टेट युनिवर्सिटी के प्रसिद्ध स्टेटिशनयन्स प्रो. बोस और प्रो. श्रीवास्तव के आमन्त्रण पर 'पोस्ट डोक्टोरल फेलो' के रूप में अमेरिका गए। उसी वर्ष उन्होंने 'फोरम फॉर इंटरडिसिप्लिनरी मैथ्स' नामक शैक्षिक संस्था की स्थापना की, जो

पिछले पच्चीस वर्षों से विश्व के सुप्रसिद्ध गणितज्ञों का एक ऐसा लोकप्रिय मंच है, जिससे शोधजर्नल और संगोष्ठियों के माध्यम से विद्वान् गणितविषयक आधुनिक जानकारियों और अनुसन्धानों का आदान-प्रदान करते हैं। इस फोरम की प्रति वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की एक संगोष्ठी होती है, जो एक वर्ष भारत में और दूसरे वर्ष विदेश में आयोजित हो रही है—यह क्रम भूदेव शर्मा की अध्यक्षता के काल से ही प्रारम्भ हुआ था।

1979 में ट्रिनिडाड देश के एक विश्वविद्यालय में एक विशिष्ट प्रोफेसर के पद पर आपको नियुक्ति हुई। वहाँ अपने प्रवासकाल में गणित के क्षेत्र के अतिरिक्त साहित्य और समाज के क्षेत्र में भी आपने सक्रिय रहकर कई कार्य प्रारम्भ किए। भारतीय मूल के व्यक्तियों के कार्यों में विशेष रुचि हिंदी भाषा के प्रसार और प्रचार के लिए समिति का गठन और 'हिंदी निधि' की स्थापना एवं उसके अन्तर्गत पुस्तकों के प्रकाशन कार्यों में सहयोग आदि आपके कुछ ऐसे कार्य हैं जिनके मूल में भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषा और भारतीय विद्या के प्रति पल आस्था स्पष्ट परिलक्षित होती है।

1988 में आप अमेरिका को जेवियर युनिवर्सिटी, लुसियाना में पहले प्रोफेसर और फिर विभागाध्यक्ष के पद से गणित-विज्ञान के उत्कर्ष में दन्तचित हुए, पर साथ ही भारतीयता की भावना से प्रेरित होकर 1991 से त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'विश्वविवेक' के सम्पादन का दायित्व भी वहन किया। विश्वविवेक आज अमेरिका से प्रकाशित होने वाली एक लोकप्रिय और विशुद्धतया साहित्यिक पत्रिका के रूप में जानी जाती है। भूदेव शर्मा के भारतीय विद्या के प्रसार के कार्य का एक प्रशंसनीय पक्ष वैदिक ज्ञान और वैदिक संस्कृति के उन्नयन से सम्बद्ध है। 'हिन्दू युनिवर्सिटी आफ अमेरिका' के एक निदेशक के रूप में आप इस ओर सक्रिय रहे हैं, पर साथ ही उसे और अधिक मूर्तरूप देने के उद्देश्य से 1996 में अटलान्टा में 'वर्ल्ड एसोसियेशन फॉर वैदिक स्टडीज' नामक संस्था की स्थापना भी की। यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैदिक विद्वानों और प्राच्यविद्याविदों को भारतीय विद्या के विविध पक्षों और विधाओं पर विचार-विमर्श और चर्चा करने का एक ऐसा मौका उपलब्ध कराती है, जिसकी उपमा किसी भी स्तरीय अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्था से की जा सकती है। उसके अन्तर्गत सम्मेलन और प्रकाशन कार्यों का प्रमुख निर्देशन डा. शर्मा के द्वारा ही किया जा रहा है।

इस प्रकार डा. भूदेव शर्मा ने पहले ट्रिनिडाड और फिर अमेरिका में रहकर गणित के क्षेत्र में अप्रतिम कार्यों के साथ भारतीय विद्या, वैदिक संस्कृति, हिंदी भाषा और भारतीय आचार पद्धति के सम्बद्ध में एक के बाद एक अनेक कार्य करके यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय मनीषा की शक्ति अपार है उसे तो केवल निष्ठा और आत्मविश्वास का सम्बल चाहिए। अपने शोध विषय गणित पर बाइस पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन उनको विश्व के प्रतिष्ठित गणितज्ञों की कोटि में शामिल करवाता है, तो भारतीय विद्या को अप्रवासियों के मध्य दूर देश में मनोयोग के साथ प्रचार करने में प्रयत्नशील रहना उन्हें सच्चे भारतीय होने का गौरव प्रदान करता है। इतना सब

कुछ होने पर भी, सौम्यता और सज्जनता उनके व्यक्तित्व की अप्रतिम विशेषताएं हैं, जो भूदेव शर्मा के सन्दर्भ में 'विद्या ददाति विनयम्' उक्ति को चरितार्थ करती है।

सुश्री संध्या चक्रवर्ती

दिल्ली में एक चटर्जी परिवार में जन्मी सन्ध्या एक अन्तर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति के अन्तर्गत स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका गई। उन्होंने मेधावी प्रतिभा का भरपूर लाभ उठाते हुए 'दर्शन' को अपने अध्ययन और शोध का विशेष विषय बनाया। बाद में मनोविज्ञान में विशेष रुचि उत्पन्न होने से वे उस क्षेत्र में प्रवेश कर गईं और इस प्रकार 'दर्शन' और 'मनोविज्ञान' दोनों विषयों में योग्यता अर्जित करते हुए उन्होंने अमेरिका से ही इनकी स्नातकोत्तर उपाधियां प्राप्त की। सन्ध्या चक्रवर्ती ने अपने लिए कार्य का जो क्षेत्र चुना—वह उनकी शिक्षा पर आधारित था और साथ ही उनकी लोककल्याण भावना से संचालित था। वस्तुतः पिछले लगभग दस-ग्यारह वर्षों से वे बच्चों युवाओं और पारिवारिक सम्बन्ध को लेकर उत्पन्न होने वाली मानसिक समस्याओं, विषमताओं और असन्तुलनों पर सहृदयता के साथ कार्य कर रही हैं। साथ ही अध्यापन और प्रशिक्षण तथा लेखन कार्यों के द्वारा भी इसी क्षेत्र में व्यवहारिक स्तर पर कार्यरत हैं।

वस्तुतः संध्या चक्रवर्ती अमेरिका में पिट्सबर्ग में रहकर एक 'मनोविज्ञानिक' के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। उनका कार्य चिकित्सा करना और व्यक्ति को स्वास्थ्यलाभ कराना है—पर अन्य चिकित्सकों या मनोरोगविशेषज्ञों से भिन्न भूमिका का निर्वाह करते हुए यहां वे इलाज तो करती हैं पर बिना औषधि के। सामाजिक तौर पर उपेक्षा, निराशा या आर्थिक असमर्थता से ग्रस्त होने पर व्यक्ति के अन्दर उभर आई कुण्ठाओं के कारण जब चिकित्सकों की चिकित्सा पद्धति और दवाईयां कार्य नहीं कर पाती हैं,—तब मनोवैज्ञानिक सन्ध्या चक्रवर्ती का कार्य आरम्भ होता है कि कैसे और क्यों यह परिस्थिति उत्पन्न हुई है। चिन्ता और निराशा को दूर करने के लिए इस प्रकार की थैरेपी का अध्ययन उन्होंने पेन्सिल्वेनिया की युनिवर्सिटी में विकसित किए गए मॉडल के आधार पर किया है। सन्ध्या का मानना है कि यह मॉडल भारतीय विद्या में सदियों पूर्व ही प्राप्त होता है। महाभारत में अर्जुन का विषाद और उससे उत्पन्न हुए सभी लक्षण शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विकारों को उत्पन्न करते हैं। आज भी इसी प्रकार के अनेक मानसिक असन्तुलन विसाद से उपजते हैं और उनको स्त्री पुरुष सभी में समान रूप से देखा जाता है। इनका निदान व्यक्ति को स्वयं करना होता है—केवल निर्देशन, मार्गदर्शन या सहायता भर अपेक्षित होती है। यह सहायता ही "क्लिनिकल कन्सलटेन्ट" के रूप में सन्ध्या चक्रवर्ती कर रही हैं। उनका वैशिष्ट्य इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि उनके उपचार के मूलधार भारतीय दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास और धर्म है। भारतीय परम्पराएं और वैचारिक धरोहर को वे अमूल्य निधि मानती हैं और पाश्चात्य परिवेश में उनका उपयोग करती हैं। यही कारण है कि विदेशी समुदाय में उनके कार्यों को अलग से पहचाना जा रहा है। आत्म विश्वास और अपने कार्य के विषय में

निश्चयात्मक निर्गम शक्ति होने पर मानसिक विकृतियों और समस्याओं का निदान सम्भव है और उसको कैसे अर्जित या प्रोन्नत किया जाए—यह मनोवैज्ञानिक कार्य है। श्रीमद्भगवद्गीता को आदर्श ग्रन्थ मानकर वे उसके आधार पर विषाद के सम्बद्ध में कई लेख लिख चुकी हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। भारत और दूसरे देशों में उनके व्याख्यानो का भरपूर स्वागत किया जाता है, क्योंकि विषय में गहरी पैठ के साथ-साथ प्रभावी प्रस्तुति उनमें सोने में सुहागे का कार्य करती है।

रीडर, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कालेज, नई दिल्ली

(54 साक्षर अपार्टमेन्ट्स, ए 3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063)

इंग्लैंड में प्रवासी भारतीय

—डा. सुरेन्द्र अरोड़ा

रह-रह कर याद आती है अपने वतन की मिट्टी

इंग्लैंड की धरती पर वह मेरा पहला दिन था। लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे से बाहर निकलते हुए मेरी नज़रें हवाई अड्डे के बड़े से हाल में झाड़ू से सफाई करते चूड़ियों भरे हाथ पर अटक गई थीं। यह तो अपने देश की लगती है? मेरे मन में प्रश्न गूँजा ही था कि मुझे लेने आए मेरे दूतावास के प्रोटोकोल अधिकारी श्री सिंह ने बताया था "हां जी ये खालिस हिंदुस्तानी हैं।" हमारे देश से आई हैं ये औरतें। आप इनकी बाहें देखिए कैसे सोने की चूड़ियों से भरी हैं। जनाब गाड़ी से आती हैं ये औरतें ड्यूटी पर! सफाई की। कूड़ा उठाया। फिर ड्यूटी पूरी करने के बाद पार्किंग से मोटर निकाली और खुद ड्राइव करके अपने घर की ओर चल दीं। मोटर ही नहीं बड़े-बड़े घर भी हैं इनके। परिवार के सभी सदस्य कमाते हैं। ज्यादातर चार-चार, पांच-पांच दशकों से आए हुए लोग हैं ये। उन दिनों से—जब यहां आने पर कोई पाबंदी नहीं थी। शुरू में तो एक व्यक्ति आया। अपने पैर जमाए। फिर भाई बहनों को बुलाया। धीरे-धीरे सारे कुनबे को। चाचा-ताया। मामा-मामी। एक-एक करके सभी आकर बस गए हैं क्वीन-विक्टोरिया के इस मुल्क में।' श्री सिंह आगे बताते हैं।

हवाई अड्डे से निकल कर स्टॉफ कार से अपने घर तक का सफ़र बिल्कुल नया अनुभव था। सड़कों का विस्तृत जाल, जिनमें चार लेन वाली सड़कों पर पंक्तिबद्ध गाड़ियां दौड़ रही थीं। एक के पीछे एक। सड़कों के दोनों ओर माचिस की डिबिया से विक्टोरिया शैली के झोपड़ीनुमा छत वाले घर। श्री सिंह बताते हैं, पूरे इंग्लैंड में कहीं भी चले जाएं। किसी भी नगर में। ऐसे ही एक जैसे घर! एक जैसे बाज़ार! लंदन से बर्मिंघम; मेन्चेस्टर चले जाओ या सूदूर स्कॉटलैंड के एडिनबरा या ग्लासगो नगर! एक जैसा लगेगा सब कुछ। यहां इस देश में बाहर से घरों की वास्तुकला, उनका डिज़ाइन एक जैसा रखना एक अनिवार्यता है। तभी तो यहां आसानी से रास्ते याद नहीं होते। "लगता है एक ही जगह घूम रहे हैं।" श्री सिंह हंस पड़ते हैं। हमारी गाड़ी आगे बढ़ रही है। वातावरण में बड़ी खामोशी है। इक्का-दुक्का गाड़ियां ही दिखाई दे रही हैं। वैसा आदमियों का हुजूम सड़कों पर दिखाई नहीं दे रहा है, जैसा हमारी दिल्ली में हर सड़क पर दिखता है। "आज छुट्टी है क्या?" कोई बंदा नज़र नहीं आ रहा है?" मैं पूछ बैठा हूं। "यह दिल्ली या जालंधर नहीं है जनाब!" जहां रिक्षावालों की ट्रिन-ट्रिन। बंपर से बंपर टकराती गाड़ियों और ट्रकों के कानफाड़ हार्नों का शोर सुनाई देगा। यहां तो हार्न तब बजाएंगे, जब अगली गाड़ी का ड्राइवर कोई गलती करे, उसे डांट लगाने के लिए बजाते हैं हार्न यहां।' सिंह बताते हैं और आगे

जोड़ते हैं, "शोर और चहल-पहल मिलती है यहां अपने देसी इलाकों में। अभी हम साउथाल से गुजरेंगे तो खुद ही देख लीजिएगा। लगेगा आपको कि कारोल बाग आ गए। और वाकई साउथाल से गुजरते हुए गुप्ता चाट हाउस", "चावला चिकन कार्नर", "राधेश्याम स्वीट हाउस", "मेहरा सिल्क सारीज़", और उनके आगे पटरी पर लगी छोटी-छोटी दुकानें! और 'पाउंड ए यार्ड'! 'पाउंड ए यार्ड' गुहार लगाते दुकानदार! और पटरियों पर तली जा रही जलेबियां—समोसों की गंध नथुनों में भर जाती है तो लगता है कि हम दिल्ली के किसी भीड़-भाड़ वाले बाजार में आ गए।"

उधर हमें आजूदी मिली, इधर अंग्रेजों ने घर चापसी की। यहां लौटकर उन्होंने मजदूरी की, हाथ से काम करने वालों की कमी महसूस हुई और अंग्रेज हंमारे वतन से बड़ी संख्या में भारतवंशियों को यहां ले आए और लंदन से बाहर हीथ्रो हवाई-अड्डे के पास रबर की एक फैक्ट्री लगाई, जिसमें मजदूरी के काम पर भारत से लाए गए लोगों को लगाया गया। इस फैक्ट्री से आने वाले रबर की गंध के कारण गोरे यहां नहीं रहना चाहते थे। इसलिए उन्होंने भारत से आए लोगों को यहां बसा दिया। यही साउथाल कहलाता है। साउथाल की अधिकांश आबादी भारतीय या फिर पाकिस्तान मूल की ही है और दुकानों-बाजारों पर भी भारतीय मूल के लोगों का आधिपत्य है। यहां कोई गोरा नजर नहीं आता। एक बार की बात है जी! कोई गोरा पता पूछता हुआ साउथाल में किसी सरदार जी के घर चला गया और उसे पूछा, "डॉ. बिल जॉन्सन लिव हियर (क्या बिल जॉन्सन यहां रहते हैं?) तो सरदार जी ने जवाब दिया, सॉरी नो फॉरेनर लिव्स हियर (माफ़ कीजिए, यहां कोई विदेशी नहीं रहता)।" सिंह बताते हैं और ठहाका लगाकर हंसते हैं और आगे जोड़ते हैं, "समोसे, जलेबी, पकोड़े, चिकन टिक्का! खरोड़े! दोसा-इडली, हिंदी फिल्मों के ऑडियो वीडियो कैसेटों का भी बहुत बड़ा बाजार है। यहां! ड्राइफ़ूट और हमारे भारतीय दाल-चावल, आटा, क्या नहीं मिलता यहां! और रेशमी परांटे-सलवार-सूट वाली मुटियारें। कोई कह सकता है हम वतन से दूर हैं" सिंह सड़क पार करती हुई लड़कियों की ओर इशारा करते हैं। "और इनकी भाषा" मैं प्रश्न करता हूं। "बड़े-बूढ़े तो घर में अपनी मातृ-भाषा पंजाबी-हिंदी, गुजराती बोलते हैं, अंग्रेजी के शब्द-वाक्य मिक्स करके। जैसे फ़ूड-शूड खा लो! मिलक-शिल्क पी लो। बड़ी विंडा (हवाएं) चल रहीयां ने। डोर-शोर बंद कर दो। और जब एक दूसरे से मिलेंगे तो कहेंगे, "लांग टाइम नो सी।" यहां तो बड़ी-बूढ़ी औरतें भी अपनी बात कह लेती हैं। समझ लेती हैं गोरों को। और यहां अपने देसी भाई लोग एक शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं—तकिया कलाम की तरह! आल राइट है। कैसे हो? आल राइट है! खाना पीना हो गया? आल राइट है! हैल्थ-शैल्थ कैसी है? आल राइट है। इस पर एक चुटकला बहुत प्रसिद्ध है। यहां एक पंजाबी भाषी भारत से आने वाले अपने किसी परिचित को लेने एअरपोर्ट गए। जब बाहर निकल कर दोनों गले मिले तो भारत से आए उनके अतिथि मित्र ने पूछा, "सुना भाई, सोहन सिंहा की हाल है!" "आल राइट है।" सोहन सिंहा भरजाई कैसी है! "आल राइट है!" "बच्चे" "आल राइट हैं!" सोहन सिंहा "ते वड्डे दार जी" (पिता जी)? उनका तो आल राइट हुए दो साल हो

गए।" और हमारी चलती हुई गाड़ी में टहाके गूंजते हैं। मुझे अपने घर की याद आती है। मैं उदास हो जाता हूँ लगता है जैसे एक दिन नहीं-सौ साल हो गए हों अपना देश छोड़े हुए। मैं चलती हुई गाड़ी से बाहर ताकने लगता हूँ- साउथाल! साउथाल की समोसे-जलेबी की दुकानें कब पीछे रह गईं, पता नहीं चला। भारत और इंग्लैण्ड के बीच समय का अंतराल अब कुछ महसूस हो रहा है। मेरी पलकें भारी होने लगीं हैं।" सिंह साहब जरा दो झपकी लेने का मन हो रहा है। "और आंखें बंद कर लेता हूँ।" श्योर। श्योर। गाड़ी अपनी गति से आगे बढ़ रही है। मैं नींद की घाटी में उतर जाता हूँ। कब घर आ जाता है, मुझे पता तब चलता है जब आई. पी. सिंह मेरा कंधा हिलाते हैं। "उठिए!" घर आ गया आपका। "ओह! मैं अचकचा कर आंखें खोलता हूँ और बाहर के पूरे दृश्य को आंखों में भरने का प्रयास करता हूँ। हम बीच की सड़क पर हैं। ढलवा सड़क। दोनों ओर मकान हैं। इसमें दाईं ओर के पहले मकान के सामने हमारी गाड़ी खड़ी है। ड्राइवर मेरा सामान डिक्की में से निकाल रहा है। मैं अपने मकान को ऊपर से नीचे तक आंखों में भर लेता हूँ। लाल ईंटों वाला झोपड़ी नुमा छत वाला यह मकान भीतर से कैसा होगा। फिर दाएं-बाएं नजरें घुमाता हूँ। आमने-सामने पंक्तिबद्ध मकान। एक जैसे। मुझे बचपन में रामलीला के मंच पर पीछे लगे पर्दे पर बने एक जैसे मकानों की याद होती है। अच्छा लगता है। पुलकित होता हूँ। आई०पी० सिंह दरवाजा खोलते हुए कहते हैं, "आइए। यह साउथ लंदन का इलाका है केंट। इसमें यह है आपका घर। आपके घर में आपका स्वागत है। "मेरी नजरें लंबे बड़े कमरे में दौड़ रही हैं। सिंह बताते हैं", यह डाइंगरूम है। इसके साथ किचन है और पीछे गार्डन। ऊपर तीन बेडरूम हैं। आगे भी छोटा सा गार्डन। कोने का मकान है। आप बड़े लकी हैं। इतना खुला। धूपवाला मकान मिला है आपको।" "बहुत धन्यवाद। आपकी कृपा से यह संभव हुआ। अब आप चलिए। आराम कीजिए। बहुत कष्ट दिया आपको।" मैं सिंह साहब को विदा करता हूँ और अपना दरवाजा बंद करने को होता हूँ कि दो व्यक्ति हाथ जोड़े खड़े हो जाते हैं, "मैं के०के० शर्मा। मैं सुरेश चंद्र। हम आपके सहकर्मी हैं और पड़ोसी भी। लंदन में आपका स्वागत है। आपकी फैमिली? वे दोनों मेरा अभिवादन करते हुए पूछते हैं।" बाद में आएगी। मैं उत्तर देता हूँ और हाथ जोड़ देता हूँ। वे लोग थर्मस में चाय, ब्रेड, बिस्कुट और दूध छोड़ जाते हैं। रात का भोजन सुरेश चंद्र जी के घर है। शर्मा कहते हैं और फिर यह डिनर्स का सिलसिला कई शामों तक चलता है और फिर दिन हफ्ते बनते हैं, हफ्ते महीनों और सालों में तबदील होते चले जाते हैं।

अब विदाई के डिनर्स का सिलसिला। और फिर लंदन की आखिरी सुबह के लिए पड़ोसी मित्रों द्वारा छोड़ी गई ब्रेड, दूध और चाय का सामान।

वक्त हवा के पंख लगाकर उड़ गया है। भारत लौटे भी दो साल कब निकल गए पता ही नहीं चला। मन के आकाश पर स्मृतियों के पंखी पर फड़फड़ा रहे हैं।

मुझे याद आ रहे हैं सुरेन्द्र नाथ लाल, जिन्होंने श्रीमद्भागवद् गीता का हिंदी व अंग्रेजी अनुवाद साथ-साथ किया और मूल संस्कृत श्लोक भी रोमन में दिए। 1932 में बलिया (उत्तर प्रदेश) में जन्मे लाल की इस कृति का हमारे पूर्व राष्ट्रपति स्व० डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने दिसंबर,

1996 में राष्ट्रपति भवन में लोकार्पण किया। सुरेन्द्र नाथ लाल के घुम्मकड़ी के शौक ने उन्हें एशिया और यूरोप की अनेक देशों की यात्रा के बाद छठे दशक में लंदन पहुंचा दिया। जहां वे स्थायी रूप से बस गए। तीन पौंड लेकर लंदन आए। यहां की ब्रिटिश क्यूजियम लायब्रेरी में क्यूरेटर के पद से सेवानिवृत्त हुए। सुरेन्द्र नाथ लाल के साथ आया इनका परिवार यहीं का होकर रह गया। दो बच्चों (लड़का-लड़की) ने अंग्रेज पत्नी/पति का वरण किया। और फिर पोता-पोती वाले लाल को जीवन के अंतिम चरण में अपनी ब्रिटिश लायब्रेरी की एक सहकर्मी युवती जैन से प्यार हो गया और 40 वर्ष के अपने दांपत्य को त्याग कर पच्चीस वर्षीया जैन से ब्याह रचा बैठे। आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास। यह कहावत सुरेन्द्र नाथ लाल के भौतिक जीवन पर काफ़ी हद तक चरितार्थ होती है। मध्यम वर्ग के उन भारतवंशी लोगों की एक जिंदा मिसाल है लाल, जिन्होंने अपने परिवार होते हुए गोरी चमड़ी के आकर्षण में या तो अंग्रेज महिलाओं से विवाहेत्तर संबंध बनाए या फिर उनसे विवाह कर लिया, किंतु लाल ने अपने अध्यात्म ज्ञान को भी परवान चढ़ाया। अपने गीता के हिंदी अंग्रेजी अनुवाद से आज वे इंग्लैण्ड के भारतवंशियों के बीच ही नहीं अंग्रेजों के बीच भी अपने धारा-प्रवाह प्रवचनों के लिए विख्यात हैं।

छठे दशक से भारतवंशियों का इंग्लैण्ड आवागमन शुरू हुआ। कुछ तो स्वयं आए-उच्च शिक्षा के लिए या फिर आजीविका की तलाश में। उस समय भारतवंशियों की जो जनसंख्या हज़ारों में थी वह अब लाखों में हो गई है। 1962 में लंदन में कुछ भारतवंशी जुड़े और उन्होंने पहले धार्मिक स्थल "हिंदू सेंटर" की स्थापना की, जहां से भारतीय संस्कृति तथा धर्म का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। छठे दशक में युगांडा और केन्या से भी भारतवंशी बड़ी संख्या में आए। जैसे तो द्वितीय महायुद्ध के बाद से भारतवंशियों के इंग्लैण्ड आने का आगमन शुरू हो गया था। समुद्री जहाजों के कप्तान भारतीयों को अपना काम पूरा होने के बाद यहां छोड़ देते थे और जो वहां रह गए उनमें कई लोगों ने तो विलायत में भारतीय जलपान गृहों का जाल फैला दिया। आज सिर्फ लंदन में दो हजार से अधिक रेस्तरां हैं, जिन्होंने भारतीय व्यंजनों को अंग्रेजों में लोकप्रिय बना दिया है। लंदन स्थित भारतीय हाई कमिश्नर ब्रिटेन के संसद सदस्यों के लिए विशेष रूप से प्रायः "करी लंच" का आयोजन करते हैं, जिसमें भारतीय व्यंजन परोसे जाते हैं। किंग जॉर्ज को भारत के चटपटे मसालेदार व्यंजन विशेष रूप से प्रिय थे, जिनके लिए उसने विशेष रूप से एक भारतीय रसोइए की नियुक्ति की थी। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहर लाल नेहरू अपनी लंदन यात्रा पर इंग्लैण्ड की महारानी के लिए अचार ले जाया करते थे। इंग्लैण्ड के युवराज चार्ल्स को आम बहुत प्रिय हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय मूल के लोगों को अंग्रेज भी अपने साथ तो लाए पर श्रमसाध्य काम करवाने के लिए और अंग्रेजों ने उन्हें शहर से दूर और बाहर लगी फैक्टरियों में काम पर लगाया, जहां से धुआं उठता था और रबर की गंध आती थी और वहीं पर उन्हें बसाया भी। आज पांच दशक के बाद भारतीय मूल के जो लोग मेहनत मजदूरी करने आए थे, उन्होंने अपने श्रम, अपनी निष्ठा से अपना मुकाम ही नहीं बनाया, अपनी आगामी पीढ़ियों को उच्च शिक्षा

भी दी, डाक्टर बनाया, इंजीनियर बनाया, वकील बनाया और आज इंग्लैण्ड में हर तीसरा डाक्टर और टेक्नोक्रेट भारतीय मूल का व्यक्ति ही है। और फिर भारतीय मूल के लोगों का प्रसार इंग्लैण्ड के अन्य नगरों में शुरू हुआ। आज स्थिति यह है कि मेन्चेस्टर को भारतवंशियों ने ऐसा होजरी व सिले-सिलाए कपड़ों का केंद्र बना दिया है कि उसे इंग्लैण्ड का लुधियाना कहा जाता है। बर्गिंघम भी गारमेंट्स का केंद्र होने के साथ-साथ इस्पात मिलों और फाउंड्रियों का केंद्र भी है। छठे-सातवें दशक का इंग्लैण्ड बहुत सस्ता था, जब प्रति व्यक्ति की आय 4—5 पाँड प्रति सप्ताह हुआ करती थी और 500—1000 पाँड में एक ठीक-ठाक सा मकान खरीदा जा सकता था। किंतु आज इंग्लैण्ड दुनिया के सबसे महंगे देशों में है। आज अकुशल व्यक्ति की आय 100—125 पाँड प्रति सप्ताह है। सस्ते का जमाना था, वह जब पूरे लंदन की यात्रा 5 पेंस में की जा सकती थी। आज एक ओर का रेल का न्यूनतम किराया तीन पाँड है और लंदन के चारों जोन की यात्रा का रेल कार्ड पांच पाँड का हो गया है।

अपने छः वर्ष के इंग्लैण्ड प्रवास में एक विशेषता मैंने पाई अपने भारतवंशी जनमानस में। घर-बार जरूर बना लिए यहाँ भारतवंशियों ने, पर मन सबका आज भी भारत में, भारतीय संस्कृति में ही रचा बसा है। तन जरूर विदेश में है इनके, पर मन अपने देश भारत में ही रमे हैं। हां कुछ अपवाद अवश्य हैं। जो भारतवंशी ब्रिटिश नागरिक हो गए हैं, वे बार-बार बीजा लेने के झंझट से बचने के लिए दोहरी नागरिकता चाहते हैं। इसका एक दूसरा प्रश्न यह भी है कि जिनके पास अभी भी भारत की नागरिकता है, वे इंग्लैण्ड के लाभ और सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इसीलिए इंग्लैण्ड के भारतवंशी दोहरी नागरिकता (इंग्लैण्ड और भारत की) का समर्थन करते हैं।

जहाँ एक ओर सुरेन्द्र नाथ लाल इंग्लैण्ड में अंग्रेजी सभ्यता के बीच गीता के संदेश का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर लंदन आर्य समाज के संस्थापक-प्रधान प्रो. सुरेन्द्र नाथ भारद्वाज ने हिंदू धर्म के संस्कारों को विधिवत् सम्मन कराने की दिशा में पहल करते हुए गृह प्रवेश से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक का अंग्रेजी भाषा में साथ-साथ अनुवाद प्रस्तुत करके एक नई शुरुआत की। इतना ही नहीं उनके प्रयासों से आज वैदिक शिक्षा पद्धति को इंग्लैण्ड की अनेक काउंटियों (जिलों) के शिक्षा पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

ब्रिटिश रेल के एक वरिष्ठ इंजीनियर गोडबोले प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर के जन्मशती वर्ष, 1983 से ही इंग्लैण्डवासियों को उन स्थानों का भ्रमण कराते आ रहे हैं, जहाँ हमारे स्वतंत्रता सेनानी आकर रहे थे। गोडबोले अपने इस भ्रमण कार्यक्रम की शुरुआत करते हैं, लंदन के यूस्टन उप नगर से जहाँ इटली के स्वतंत्रता सेनानी मैजिनी रहते थे, जिन्होंने वीर सावरकर पर एक अमिट छाप छोड़ी थी। वीर सावरकर श्यामजी—कृष्ण वर्मा की छात्रवृत्ति पर लंदन आए। गोडबोले वह शिक्षा संस्थान भी दिखाते हैं, जहाँ वीर सावरकर ने कानून की पढ़ाई की और वे घर भी, जहाँ लोकमान्य तिलक, मदन लाल दींगरा रहते थे। वीर सावरकर ने लंदन में 1910 में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में, जो उस समय बैरिस्टर गांधी के नाम से जाने जाते थे, विजया दशमी पर्व का आयोजन किया। गांधी जी ने इस अवसर पर कहा, "अपने मतभेदों के बावजूद

आज सावरकर के साथ यहां होना, मेरे लिए बड़े सम्मान की बात है। हमारे देश भारत को सावरकर के बलिदानों का सुफल मिले, मेरी यही कामना है।''

इंग्लैण्ड का सामाजिक क्षेत्र हो, राजनीतिक क्षेत्र हो या फिर औद्योगिक क्षेत्र, हर क्षेत्र में भारतवंशी शीर्ष स्थानों पर 1966 में कलकत्ता से लंदन आए चाहे वे उद्योगपति स्वराज पाल हों, जो कि इंग्लैण्ड के धनी लोगों में से एक हैं और लॉर्ड स्वराज पाल हैं या फिर उद्योगपति बागड़ी या फिर इस्पात सम्राट कहलाने वाले उद्योगपति लक्ष्मी नारायण मित्तल या इंग्लैण्ड के रेडी टू सर्व भारतीय खाद्य पदार्थों के क्षेत्र में क्रांति लाने वाले जी.के. नून या फिर उद्योगपति हिंदुजा बंधु— सभी ने अपने-अपने क्षेत्रों में एक मुकाम तो बनाया ही है, साथ-साथ अपने देश की गरिमा भी बढ़ाई है।

अपने इंग्लैण्ड प्रवास के बाद अपनी देश-वापसी अच्छी लगती है, ठीक वैसे ही जैसे इंग्लैण्ड में रच बस गए भारतवंशियों को वहां रहते हुए भी अपना देश, अपने देश की मिट्टी अच्छी लगती है, बहुत अच्छी लगती है।

ई-202. सागर सदन. 113 आई पी एक्स्टेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

भारतीय प्रवासी—आशाएं और अपेक्षाएं

—वेद प्रकाश अरोड़ा

“जितने लोग यहां मेरे स्वागत के लिए आए हैं उतनी संख्या तो कुल फिजी वासियों की भी नहीं है। मेरे लिए यह मर्मस्पर्शी अनुभव है, जिसे मैं भुलाए भूल नहीं सकता हूँ”। ये उद्गार हैं—प्रशांत महासागर के नन्हें से द्वीप-समूह फिजी के अपदस्थ प्रधानमंत्री महेंद्र पाल चौधरी के, जिनके परदादा रामनाथ 1912 में रोहतक से पांच मील दूर बहुजमालपुर गांव की पगडंडी से होते हुए फिजी में ईख की खेती करने गए थे। उसी पैतृक गांव और रोहतक जिले में उमड़े विशाल जनसमूह के बीच स्थान-स्थान पर महेंद्र चौधरी और उनकी धर्मपत्नी वीरमति ने खुशी से नम हुए नयनों से बड़े बुजुर्गों के पैर छू कर आशीर्वाद पर आशीर्वाद प्राप्त किया। यह पुरजोश अभिनंदन और हार्दिकता से ओतप्रोत दृश्य प्रवासी भारतीयों और भारतवासियों के अटूट रिश्तों को रह रहकर याद दिला रहा था। प्रवासी भारतीय जब भी, जिस हाल में और जिस भी जाने अनजाने देश में गए हैं, उन्होंने भारत की निखरी छवि पर कोई कालिख नहीं लगाने दी, उलटे भारत की संकट की घड़ी में उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़े।

विदेशों में बसे भारतीयों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। एक वे जो वहां के नागरिक बन गए हैं और दूसरे वे जो वहां के नागरिक नहीं बने हैं या किन्हीं कारणों से बनाए नहीं गए हैं। कहने को ये सभी प्रवासी या समुद्रपारीय भारतीय हैं, लेकिन नागरिक बने और नागरिक न बने भारतीयों में भेद करने के लिए पहले वर्ग के लोगों को भारत या भारतीय मूल के व्यक्ति और दूसरे वर्ग के लोगों को प्रवासी भारतीय का सामान्य नाम दिया गया है। मोटे अनुमानों के अनुसार भारत मूल के व्यक्तियों की संख्या दो करोड़ से कुछ अधिक और प्रवासी भारतीयों की संख्या लगभग 60 लाख है। वैसे दोनों श्रेणियों के भारतीयों को कमोबेश एक जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन प्रवासी भारतीयों के भारतीय सीमाओं से प्रस्थान के कालक्रम पर नजर डालें तो उन्हें मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक : उपनिवेश काल के प्रवासी। दो : उत्तर उपनिवेश काल के प्रवासी और तीन: भारत के विभाजनकाल के प्रवासी। उपनिवेश कालीन प्रवासी वे भारतीय हैं जिन्हें एक प्रकार की दासता की बेड़ियों ने जकड़ कर फिजी, सूरीनाम, मारीशस, त्रिनीदाद, टोबेगो, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका और मलेशिया जैसे देशों में उनकी मर्जी के खिलाफ या झूठे प्रलोभन देकर भारत से दूर ले जाया गया। इन्हें अनुबंधित या बंधुआ मजदूरों के रूप में बागानों और खानों में काम के लिए जहाजों में भेड़ बकरियों की तरह भर कर कभी इस तो कभी उस देश में उतारा गया। ये अपने गौरे मालिकों के लिए कड़ी मेहनत कर दो जून रोटी कमाया करते थे। उत्तर-उपनिवेश काल के प्रवासी वे भारतीय हैं जो मुख्य रूप से आधुनिक उन्नत देशों जैसे अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी और आस्ट्रेलिया

आदि देशों में जा बसे हैं। ये लोग स्वेच्छा से और उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के लिए इन देशों में गए हैं या जा रहे हैं। इधर मध्यवर्गीय या उच्च मध्य वर्गीय परिवारों के युवाओं का उच्चतर अध्ययन के लिए अथवा बेहतर नौकरी या व्यवसाय की तलाश में इन देशों में जाना काफी बढ़ गया है। उदाहरण के लिए 1995 से 1998 तक अमरीका, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया जाने वाले इन लोगों की संख्या में 10 प्रतिशत वार्षिक और कनाडा में जाने वाले लोगों की संख्या में 50 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। श्रमिकों, मिस्तरियों, घरेलू कर्मचारियों, बावरचियों, और ऐसे ही छोटे-छोटे व्यवसायों के लिए खाड़ी देशों में भी अनेक भारतीय गए हैं और इनमें से कुछ वहीं बस गए हैं। भारत के विभाजन काल के प्रवासी वे मुसलमान हैं जो बटवारे के समय मजहबी आस्था के कारण, उस समय के पाकिस्तान में चले गए थे। पाकिस्तान के दो भागों में बंटने के बाद ये प्रवासी बंगला देश में बिहारी मुसलमान और मौजूदा पाकिस्तान में मुहाजिर कहलाते हैं। ये लोग मजहबी जोश जनून की वजह से भारत से चले तो गए, लेकिन अपना भविष्य अनिश्चित अथवा अंधकारमय समझ कर अपने मूल स्थानों को लौटने के लिए बेचैन हैं। अपने ही प्रकार के निराले और स्वयं, मुसीबत मोल लेने वाले इन लोगों को कुछ विशेषज्ञ, प्रवासी की बजाए शरणार्थी कहना अधिक पसंद करते हैं।

बहरहाल प्रवासी भारतीय चाहे जबरन ले जाए गए हों या स्वेच्छा से गए हों, चाहे गरीबी से उबरने के लिए गए हों या धन बटोरने के लिए और बेहतर व्यवसाय शुरू करने के लिए गए हों—आज इनमें से अनेक प्रवासी भारतीय राजनीति, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, विज्ञान, टेक्नालोजी, चिकित्सा कला, और संस्कृति आदि क्षेत्रों में आसमान की ऊंचाइयों को छू रहे हैं। कुछ प्रवासी भारतीय देश विशेष के स्थानीय निकायों तथा संसदों के सदस्य बन कर ख्याति प्राप्त कर रहे हैं, तो कुछ को प्रधानमंत्री या अन्य शीर्ष पद ग्रहण करने का श्रेय प्राप्त है। प्रवासी भारतीयों में चोटी के कई उद्योगपति शामिल हैं, जैसे इस्पात इंटरनेशनल के लक्ष्मी मित्तल जो विश्व के छठे सबसे बड़ी स्टील ग्रुप के मालिक हैं। हिंदुंजा बंधु-श्रीचंद और गोपीचंद-ब्रिटेन के आठवें सबसे धनाढ्य व्यक्ति हैं। लार्ड स्वराजपाल न केवल ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स के सम्मानित सदस्य हैं बल्कि ब्रिटेन में एशिया के तीसरे सबसे धनाढ्य व्यक्ति हैं। आज विश्व का हर छठा व्यक्ति भारतीय है। एशियाई नहीं, अफ्रीका, यूरोप, उत्तरी अमरीका, लेटिन अमरीका, कैरीबियन सागर और प्रशांत महासागर के विभिन्न द्वीपों यानी भू-लोक के ओर छोर में भारतीय बसे हुए हैं। सूरीनाम, मारीशस और फिजी में तो भारत-मूल के लोग कुल आबादी के आधे से कुछ कम या अधिक हैं। अगर कुछ सप्ताह पहले तक महेन्द्र पाल चौधरी प्रशांत महासागर में फिजी के प्रधानमंत्री थे, तो वासुदेव पांडे कैरीबियन सागर के द्वीप त्रिनीदाद और टोबेगो के वर्तमान प्रधानमंत्री हैं। पूंजीवाद देश अमरीका में बसे हुए भारतीयों की संख्या लगभग 30 लाख है। इनमें अधिकतर भारतीय संस्कृति, पारिवारिक रीति रिवाजों, खानपान, हिंदी फिल्मों और भारतीय संगीत में रुचि को पूर्ववत् कायम रखे हुए हैं। न्यूयार्क के फिफथ एवेन्यू में भारतीय फिल्मों और संगीत को प्रसारित करने वाले रेडियो स्टेशन के कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हैं। दिल्ली के करोल बाग जैसे बाजारों के नज़ारे जगह-जगह देखने को मिलते हैं।

इधर भारत सरकार इन लाखों प्रवासी भारतीयों की विशेषज्ञता और उनकी विशाल पूंजी का लाभ उठाने तथा इन्हें भारत के विकास कार्यों में योगदान के लिए आकृष्ट करने के वास्ते सतत् प्रयत्नशील है। यह प्रक्रिया 1991 के मध्य से बाजारीकरण, उदारीकरण, विश्वीकरण और निजीकरण के चहुमुखी अभियान के बाद से जोर पकड़ती जा रही है। इसी उद्देश्य से भारत सरकार प्रतिकूल व्यापार संतुलन, विदेशी मुद्रा भंडार में गिरावट, राजकोषीय घाटे में वृद्धि और विदेशी पूंजी निवेश में कमी रोकने के लिए प्रवासी भारतीयों, उनकी पूंजी निवेशकर्ता कंपनियों और समुद्रपारीय निगमों को निरंतर अधिक से अधिक प्रोत्साहन और सुविधाएं देती रही है। एक जून 1998 को प्रस्तुत 1998-99 के बजट में तो वित्त मंत्री श्री यशवंत सिन्हा ने विदेशों में बसे हुए भारतीयों से भारत के विकास में सार्थक योगदान करने का आह्वान ही नहीं किया, बल्कि उन्हें इसमें सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए कई नए प्रोत्साहन और रियायतें देने की घोषणा भी की। इनके अनुसार किसी भारतीय कंपनी ने अनिवासी भारतीयों की एक प्रतिशत की व्यक्तिगत पूंजी निवेश सीमा बढ़ाकर पांच प्रतिशत कर दी गई। इसके अलावा किसी कंपनी में सभी प्रवासी भारतीयों के कुल पूंजी निवेश की सीमा पांच प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दी गई। इसके लिए मात्र यह शर्त रखी गई कि इस आशय का प्रस्ताव कंपनी की साधारण सभा को पारित करना होगा। इससे पहले पूंजी बाजार में कंपनियों के शेयर खरीदने पर कड़े अंकुश लगे हुए थे। प्रवासी भारतीयों को यह भी शिकायत थी कि भारतीय शेयर बाजारों में उनके शामिल होने के नियम जटिल, बोझिल, विलंबकारी और असुविधाजनक हैं। सरकार की ओर से उनकी कठिनाइयां दूर करने के लिए नियमों की समीक्षा कर उन्हें संशोधित करने का आश्वासन दिया गया। पहले प्रवासी भारतीयों के लिए अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों को मानक स्तर के उपकरण देना तथा इन स्वास्थ्य केंद्रों में गरीबों और जरूरतमंदों के लिए 25 प्रतिशत सुविधाएं मुफ्त देना अनिवार्य था। अब यह कठोर नियम हटा दिया गया। एक जून 1998 के बजट में प्रवासी भारतीयों के लिए भारत के विकास के लिए संसाधन जुटाने की तीन नई योजनाओं की भी घोषणा की गई। ये थीं :— भारतीय यूनिट ट्रस्ट की नई भारत सहस्राब्दि (मिलेनियम) स्कीम, रिसर्जेंट इंडिया बांड योजना और भारतीय मूल (पी आई ओ) कार्ड योजना। नया भारत सहस्राब्दि (मिलेनियम) स्कीम को सिर्फ प्रवासी भारतीयों द्वारा डालरों में ही अंशदान के लिए खुला रखने की व्यवस्था थी। इस स्कीम के अंतर्गत जमा राशि ऐसी भारतीय कंपनियों के शेयरों में लगाने का प्रावधान था जिनके विकास की बहुत गुंजाइश हो और जिनसे आकर्षक शर्तों पर ऋण उपलब्ध हो। दूसरी योजना के अंतर्गत भारतीय स्टेट बैंक ने अमरीकी डालरों, ब्रिटिश पाँड स्टर्लिंग और जर्मन ड्यूश मार्क में पांच अगस्त 1998 को पांच वर्ष की अवधि वाले रिसर्जेंट इंडिया बांडों की बिक्री विश्व के विभिन्न नगरों में आरंभ की। आत्मसम्मान और स्वाभिमानी राष्ट्र होने के नाते भारत ने अन्य देशों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों पर अत्यधिक निर्भरता को तिलांजलि देते हुए विभिन्न देशों में बसे हुए भारतीयों से सीधा संपर्क कर बांडों की बिक्री से खुदरा पूंजी जुटाने का विश्वव्यापी महायत्न किया। इस महायत्न में अनिवासी भारतीयों से 4 अरब 20 करोड़ डालरों से अधिक राशि केवल 14 कार्य दिवसों में प्राप्त हुई। इससे हमारा विदेशी मुद्राभंडार बढ़कर 27 अरब डालर से

ज्यादा हो गया और भुगतान संतुलन की स्थिति भी सुधर गई। रिसर्जेंट बांड का मतलब है पुनरुत्थान बांड यानी देश के फिर उत्थान के लिए जारी बांड। इस दृष्टि से यह बांड योजना बहुत सार्थक और सफल रही। इतना ही नहीं भारत ने अपने यहां के बैंकों में अनिवासी भारतीयों को रुपए और विदेशी मुद्रा खातों पर अनेक सुविधाएं पहले ही प्रदान कर रखी थीं। इनमें न केवल जमा पूंजी पर, ब्याज बल्कि मूल पूंजी भी उन देशों में वापस भेजने की अनुमति देना भी शामिल है जहां वे इस समय रहते हैं। अनेक क्षेत्रों में औद्योगिक लाइसेंस की प्रथा समाप्त करने, इन्स्पेक्टर राज का अंत करने की घोषणा, विदेशी पूंजी निवेश संवर्धन बोर्ड द्वारा विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा देने तथा केन्द्रीय स्तर पर लालफीताशाही पर प्रहार कर कार्य विधि को सरल बनाने जैसे कदम उठाए गए। इन कार्यवाहियों के कारण भारत की विभिन्न योजनाओं में पूंजी निवेश के लिए जो अनुकूल वातावरण बना, उसके परिणाम स्वरूप बांडों की बिक्री से इतनी विशाल रकम मिलना किसी चमत्कार से कम नहीं था, खासकर उस समय जब विश्वव्यापी मंदी और मुद्राओं की लंड्रखड़ाहट की आहट सब तरफ सुनाई दे रही थी। दूसरा चमत्कार यह था कि अमरीकी प्रतिबंधों के बाद अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति के गलियारों में जो यह सोच जोर पकड़ने लगी थी कि भारत की हैसियत आर्थिक दृष्टि से एक फिसड्डी राष्ट्र से अधिक नहीं रहेगी, तथा साख-निर्धारक संगठन "मूडी" द्वारा भारत का साख दर्जा घटा देने से भारत के प्रति पूंजी निवेशकों के उत्साह पर जो पाला पड़ने लगा था—उस सारे कुहासे और कुचक्र को बांडों की भरपूर बिक्री ने एक ही झटके में तहस नहस कर दिया। तियान आन मान चौक पर विद्यार्थियों पर ढाए गए जुल्मों को लेकर चीन के विरुद्ध लगाए गए पश्चिमी देशों के आर्थिक प्रतिबंधों को जिस तरह प्रवासी चीनियों ने अपने मूल देश में पूंजी लगाकर प्रभावहीन कर दिया था, वैसा ही करिश्मा प्रवासी भारतीयों ने कर दिखाया। उनकी पहल के बाद भारत पर लगे प्रतिबंध निरंतर अधिक बेईमानी और बेदम होते चले गए हैं।

निस्संदेह स्वदेश प्रेम और स्वदेशी को भुनाने की अब तक की यह सबसे सफल योजना कही जा सकती है। इस योजना से पहले भारतीय स्टेट बैंक ने अनिवासी भारतीय बांड 1988 (पहली श्रृंखला) अनिवासी भारतीय बांड (दूसरी श्रृंखला) अनिवासी भारतीय बांड 1991 जारी किए थे, लेकिन उनकी बिक्री से प्राप्त राशि पुनरुत्थान—भारत बांडों से मिली आशातीत राशि से कहीं कम थी। नई बांड योजना की सफलता ने प्रमाणित कर दिया कि एशिया की अस्थिर और डावांडोल मुद्राओं के बीच रुपए की चमक घटने की बजाए और बढ़ गई। विश्व में बसे भारतीयों ने विश्व बैंक की कुल दो अरब डालर की सहायता राशि से भी अधिक रकम जुटा कर भारत की साख को नए शिखरों तक पहुंचा दिया और विदेशी निवेशकों का भारत में पूंजी लगाने का उत्साह फिर जाग उठा। ग्यारह और तेरह मई 1998 को पोखरण में किए पांच परमाणु परीक्षणों के विरोध में अमरीका और कुछ अन्य पश्चिमी देशों के आर्थिक प्रतिबंधों के बाद अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों, कंपनियों और बैंकों की भारत में पूंजीनिवेश की मात्रा और रफ्तार काफी घट गई थी।

रिसर्जेंट बांड योजना के अधीन प्राप्त विशाल राशि से प्रोत्साहित होकर अगले वित्त वर्ष यानी 1999-2000 के बजट में प्रवासी भारतीयों और समुद्रपारीय कंपनियों को भारत में पूंजी लगाने के लिए नए अवसर, रियायतें और प्रोत्साहन दिए गए। इनके अनुसार कुछ मर्दों को छोड़ अन्य सभी में अनिवासी, भारतीयों को अब शत प्रतिशत तक पूंजी निवेश के लिए स्वतः मंजूरी मिल जाती है। वास्तविक संपदा क्षेत्र में विदेशी निवेश की अनुमति नहीं है, लेकिन अनिवासी भारतीयों और समुद्रपारीय निगमों को आवास और वास्तविक संपदा में शत प्रतिशत पूंजीनिवेश की इजाजत दी गई। आंतरिक विमान सेवाओं में सिर्फ 40 प्रतिशत विदेशी पूंजी लगाने की मोहलत है, लेकिन अनिवासी भारतीयों को शत प्रतिशत पूंजीनिवेश की अनुमति दी गई। इसी तरह बैंकिंग क्षेत्र में बहु-उद्देशीय वित्तीय संस्थाओं को केवल 20 प्रतिशत तक पूंजी लगाने की इजाजत है, लेकिन अनिवासी भारतीय और इनके समुद्रपारीय निगमों को 40 प्रतिशत पूंजीनिवेश की छूट दी गई है। जहां तक लघु उद्योग क्षेत्र की इकाइयों का संबंध है, उनमें विदेशी इक्विटी पूंजी 24 प्रतिशत तक लगाई जा सकती है जबकि अनिवासी भारतीय 24 प्रतिशत से अधिक इक्विटी शेयर खरीद सकते हैं। जब हम थोड़ा ओर पीछे मुड़ कर देखते हैं तो पाते हैं कि 1992 के बजट में प्रवासी भारतीयों और विदेशों में छह महीने से अधिक समय तक गए हुए भारतीयों को पांच पांच किलोग्राम सोना भारत लाने की अनुमति दी गई थी। इस पर पहले लगाया गया प्रति दस ग्राम पर 450 रुपए का शुल्क घटा कर 220 रुपए कर दिया गया। इससे भारत में सोने के आयात की गति तेज हो गई। आयात का वार्षिक लक्ष्य 35 टन रखा गया था, लेकिन 21 अगस्त 1992 तक के चंद महीनों में ही 38 टन से अधिक सोना भारत लाया जा चुका था। निस्संदेह तब और अब विदेशी मुद्रा भंडार में काफी वृद्धि का श्रेय प्रवासी भारतीयों को जाता है। प्रवासी भारतीयों को देश के अंदर पूंजीनिवेश और अन्य क्षेत्रों में दिए गए प्रोत्साहन के बावजूद उन्हें अब भी कुछ कठिनाइयां और असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। रियायतों और प्रोत्साहनों का विदेशों में वैसा ही प्रचार नहीं किया जाता जैसा कि रिसर्जेंट बांडों की बिक्री के दौरान किया गया। यही कारण है कि प्रवासी भारतीयों का पूंजी निवेश अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाता। इसके विपरीत चीन में कुल विदेशी पूंजी निवेश के तीन चौथाई हिस्से का श्रेय प्रवासी चीनियों को जाता है। भारत में उदार कानूनों के बावजूद निचले स्तरों अर्थात् राज्यों और जिलों में नौकरशाहों के अंकुशों की भरमार और उनके चढ़े तेवरों के कारण प्रवासी भारतीय दिल खोल कर पूंजी लगाने में संकोच करते हैं। उनकी कुछ सच्ची सुथरी मांगों पर विचार कर तुरंत कदम उठाने का अवसर आ गया है।

प्रवासी भारतीय अर्से से यह मांग बुलंद करते रहे हैं कि उन्हें दोहरी नागरिकता और यहां वोट का अधिकार प्रदान किया जाए, उनके लिए राज्यसभा में एक सीट आरक्षित की जाए तथा केन्द्र में प्रवासी भारतीयों के लिए एक अलग मंत्रालय बनाया जाए। अगर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की पृथक कानूनी परिभाषा और विशेषाधिकार हो सकते हैं तो प्रवासी भारतीयों के लिए क्यों नहीं। अनिवासी

भारतीयों की समस्याओं के समाधान के लिए राज्यों में कमिश्नर नियुक्त करने के निर्णय पर अभी तक अमल नहीं हुआ है। व्यक्तिगत प्रवासी पूंजी निवेशकों और निगमों पर कर दरें समान रूप से लागू करना न्यायसंगत होगा। उनके विचार में कंपनियों और निगमों पर अधिक कर लगाने का कोई तुक नहीं है। साथ ही प्रवासियों के भारत में ठहरने की अवधि बढ़ा दी जाए, शेरों और परिवर्तनीय ऋण-पत्रों की बिक्री पर लगा एक वर्ष का प्रतिबंध हटा लिया जाए तथा सोने के आयात पर शुल्क और कम कर दिया जाए। प्रवासी भारतीयों की यह भी मांग है कि विदेशों में भारतीय व्यापार केन्द्रों और भारतीय दूतावासों में स्थानीय व्यापारियों की परामर्श समितियां बनाई जाएं। इनमें से कुछ शिकायतें दूर कर दी गई हैं या की जा रही हैं। एक जून 1998 के बजट में चर्चित भारतीय मूल कार्ड, पी आई ओ की तीसरी योजना पिछले वर्ष 31 मार्च से लागू कर भारत मूल के लोगों को, वीसा रखने के सिरदर्द से छुटकारा मिल गया है। इस कार्ड को रखने वाला भारतीय मूल का कोई भी व्यक्ति बिना वीसा के भारत में कहीं भी बेरोकटोक आ जा सकेगा। ऐसे लोगों को कुछ विशेष आर्थिक, शैक्षिक, वित्तीय और सांस्कृतिक लाभ भी प्राप्त होंगे। कार्डधारी लोग कृषि भूमि और बागान को छोड़ अन्य कोई भी अचल संपत्ति खरीद या बेच सकेंगे अथवा हस्तांतरित कर सकेंगे। वे मैडिकल कालेजों, इंजीनियरिंग कालेजों, आई. आई. टी. और आई. आई. एम. सहित शिक्षा संस्थाओं में प्रवासी भारतीयों के आम श्रेणी के कोटे के अंतर्गत अपने बच्चों को दाखिल करा सकते हैं। इसके अलावा वे भारतीय जीवन बीमा निगम, राज्य सरकारों और अन्य सरकारी संस्थाओं की विभिन्न आवास योजनाओं का लाभ उठा सकते हैं। भविष्य में अनिवासी भारतीयों को जो भी और सुविधाएं दी जाएगी वे, पी. आई. ओ. कार्डधारियों को भी मिलेगी, लेकिन उन्हें भारत में कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। वैसे इस मामले में सरकारी नजरिए में कुछ बदलाव आता दिखाई दे रहा है। एक दिसंबर 1999 को तत्कालीन कानून, न्याय और कंपनी मामलों के मंत्री राम जेटमलानी ने राज्यसभा में बताया था कि भारत मूल के लोगों को उच्च पदों के लिए चुनाव लड़ने से रोकने के किसी प्रस्ताव पर विचार नहीं किया जा रहा है। इन सुविधाओं के मिलने के बाद भारतीय मूल के लोगों को एक तरह से दोहरी नागरिकता मिल जाएगी। स्वाभाविक है ये लोग दोनों देशों में सदभाव-सेतु अथवा अनौपचारिक दूत का काम कर भारत के हितों की रक्षा और वृद्धि के लिए ठोस काम करेंगे।

लेकिन पी आई ओ कार्ड योजना में अभी तक पाकिस्तान, बंगलादेश और श्रीलंका में जा बसे भारत मूल के लोगों के संबंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं बताई गई है। इससे कुछ शंकाओं-आशंकाओं का समाधान नहीं हो पाया है, जैसे क्या वे पाकिस्तानी नागरिक पी आई ओ कार्ड ले सकते हैं, जिनके माता पिता भारत से गए थे। इसी तरह एल टी टी ई के आतंकवादी-चरित्र के कारण, कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले काफ़ी, चाय और रबड़ के बागानों में काम के लिए गए भारतीय तमिलों को क्या पी आई ओ कार्ड दिया जा रहा है। कार्डधारियों के लिए वीसा प्रणाली हटाने के विरुद्ध यह दलील दी गई है कि इससे देश की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। कोई भी खतरनाक व्यक्ति अपने पूर्वजों के जन्म के आधार पर देश में आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त हो सकता

है। बेहतर होगा ऐसे मामलों पर गहन विचार के लिए केन्द्र में एक अलग मंत्रालय बनाया जाए, जिसकी शाखाएं राज्यों में भी हो। सरकार को इस योजना के आगे लगे कुछ सवालिया निशानों का समाधान खोजकर योजना का दूतावासों, अन्य एजेंसियों टेलीविजन संस्थानों और मीडिया के जरिए भरपूर प्रचार करना चाहिए वैसा ही प्रचार जैसा रिसर्जेंट बांडों के लिए धनराशि एकत्र करने के लिए किया गया था। तभी अपेक्षित परिणाम प्राप्त होगा। विदेशों में प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों की उच्चस्तरीय बौद्धिक और विशाल पूंजीगत संपदा है। इन्हें आकृष्ट करने के लिए नई उदार व्यापारिक और आर्थिक नीतियों का सार्थक और सक्षम प्रचार कर यह संदेश दिया जाए कि भारत जाना किसी रुग्ण या वृद्ध देश में नहीं बल्कि एक ऐसे स्वस्थ स्पंदनशील देश में जाना है जो पूंजीनिवेशकों का स्वर्ग है।

268, सत्य निकेतन, मोती बाग, नई दिल्ली-110021

कुछ जाने-माने अप्रवासी भारतीय

I. श्री हर्ब धालीवाल

(मत्स्य उद्योग और महासागर मंत्री, कनाडा सरकार) .

श्री धालीवाल का जन्म 1952 में भारत में उत्तरी पंजाब में हुआ था। उनके और उनकी पत्नी, अमृत के तीन बच्चे हैं : एंड्रिया, जसटिन और जेसिका।

श्री धालीवाल ने 1977 में ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उन्हें छोटे व्यवसायी और उद्यमी के रूप में, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में, परिवहन, रखरखाव और संपदा विकास (ट्रांसपोर्टेशन मेंटेनेंस और रॉयल इस्टेट डेवलपमेंट) के कारोबार का 25 वर्ष से भी अधिक का अनुभव है। आपने ब्रिटिश कोलंबिया हाइड्रो एण्ड पावर अथॉरिटी के निदेशक बोर्ड के उपाध्यक्ष के रूप में और ब्रिटिश कोलंबिया हाइड्रो बजट एण्ड ऑडिट कमेटीज के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया।

श्री धालीवाल को सर्वप्रथम 1993 में वेंकूवर के संघीय प्रांत साउथ-बर्नाबी से हाउस ऑफ कॉमन्स के लिए चुना गया था। संसद सदस्य के रूप में श्री धालीवाल मत्स्य उद्योग और महासागर मंत्री तथा वित्त और मत्स्य उद्योग और महासागर की स्थायी समिति के संसदीय सचिव थे। आपने स्थायी स्वास्थ्य समिति और जल कृषि कार्यबल के उपाध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। आप ब्रिटिश कोलंबिया लिबरल कॉकस और नार्दन एण्ड वेस्टर्न लिबरल कॉकस के अध्यक्ष भी थे। आपको जून 1997 में राष्ट्रीय राजस्व मंत्री (MINISTER OF NATIONAL REVENUE) नियुक्त किया गया तथा अगस्त 1999 तक इस पद पर रहे।

3 अगस्त 1999 को प्रधानमंत्री जीन क्रेटिन ने श्री हर्ब धालीवाल, संसद सदस्य, को मत्स्य उद्योग एवं महासागर मंत्री के रूप में नियुक्ति की घोषणा की।

वे प्राइम मिनिस्टर्स टीम कनाडा ट्रेड मिशन टू इंडिया (भारत के लिए प्रधान मंत्री के कनाडा ट्रेड मिशन) के सक्रिय सदस्य थे और आपने डोमिनिकन रिपब्लिक के राष्ट्रपतीय चुनावों के लिए कनाडाई प्रेक्षण दल का नेतृत्व भी किया। श्री धालीवाल क्यूबा, न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन और बीजिंग, चीन में अंतर्राष्ट्रीय संसदीय संघ (यूनियन) सम्मेलन के संसदीय शिष्टमंडल में शामिल थे।

श्री धालीवाल ने युनाइटेड वे, दि कनाडियन नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर द ब्लाइंड, दि इंडियन कल्चरल सेंटर ऑफ कनाडा, दि ओरिएंटेशन एडजस्टमेंट सर्विसिज फॉर इमिग्रेंट्स सोसायटी और दि कनाडियन इन्टरनेशनल ड्रैगन बोट फेस्टीवल सोसायटी जैसे अनेक गैर-

सरकारी संगठनों में भी सक्रिय भूमिका निभाई। उन्हें खालसा दीवान सोसायटी और साउथ एशियन लॉयर्स एसोसिएशन ने भी विशेष रूप से सम्मानित किया। उन्हें कनाडियन रेड क्रॉस सोसायटी ने कुर्दिश शरणार्थियों की सहायता से संबंधित कार्यों के लिए प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया।

आप रिचमंड, बी-सी में स्थित इंडिया कल्चरल सेंटर ऑफ कनाडा के आजीवन सदस्य हैं।

आप वेंकूवर, बी-सी स्थित कनाडियन नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि ब्लाइंड, बी-सी यूकोन डिवीजन फाउंडेशन के अवैतनिक सह-अध्यक्ष भी हैं।

आप कनाडियन म्यूजियम ऑफ सिविलाइजेशन के "इंडिया-दि लिविंग आर्ट्स" प्रदर्शनी के अवैतनिक संरक्षक भी हैं जो हल, क्यूबेक में मई, 2000 में खुलेगी।

II. श्री उज्जल दोसांझ (प्रीमियर ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया)

श्री उज्जल दोसांझ ने 24 फरवरी, 2000 को ब्रिटिश कोलंबिया के 33वें प्रीमियर के रूप में शपथ ली। आप कनाडा के पहले इंडो-कनाडियन प्रीमियर हैं।

श्री उज्जल दोसांझ का जन्म भारत के स्वाधीनता वर्ष 1946 में, भारत में हुआ। आप 17 वर्ष की आयु में इंग्लैंड और उसके चार वर्ष बाद कनाडा चले गए थे। आरामिल ग्रीन चैन पर कार्य करते हुए आपकी पीठ में चोट आई जिसके बाद आपने कम्प्यूनिटी कॉलेज में पूर्ण-कालिक छात्र के रूप में प्रवेश लिया और तत्पश्चात् अध्ययन के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया।

आपने साइमन प्रेजर विश्वविद्यालय से पहले कला स्नातक (बेचलर ऑफ आर्ट्स डिग्री) की उपाधि तथा बाद में ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त की। वर्ष 1979 में, श्री दोसांझ ने वेंकूवर में कानून की प्रैक्टिस शुरू की।

आप लम्बे समय तक मानवाधिकार कार्यकर्ता भी रहे तथा साउथ वेंकूवर नेबरहुड हाउस, मोजेक, द बी. सी. मल्टीकल्चरल सोसायटी और द बी. सी. लिबरटीज़ एसोसिएशन से संबद्ध रहे। वर्ष 1977 में, आपने लेबर एडवोकेसी रिसर्च एसोसिएशन के अध्यक्ष के पद पर रहते हुए पहले फार्म वर्कर्स लीगल एसोसिएशन का गठन करने में सहायता की। श्री दोसांझ ने दलितों और बहिष्कृतों के कष्टों और समुदाय की समस्याओं को दूर करने में अत्यंत रुचि ली।

श्री दोसांझ वर्ष 1991 में वेंकूवर प्रांत केनसिंग्टन से चुने गए। (कॉकस) सभी के सदस्य के रूप में श्री दोसांझ ने दो बार कॉकस के रूप में कार्य किया। आपने सलेक्ट कमेटी ऑन पार्लियामेंट रिफॉर्म, एथिकल कंडक्ट, स्टैंडिंग की अध्यक्षता भी की तथा इसके बाद विश्वविद्यालय चले गए।

श्री दोसांझ का विवाह सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता रमिंदर दोसांझ से हुआ। उनके तीन पुत्र हैं, पावेल, असीम और अम्बर।

आपने अटार्नी जनरल एंड मिनिस्टर रिस्पांसिबल फॉर मल्टी-कल्चरलिज्म, इमिग्रेशन एण्ड ह्यूमन राइट्स, मिनिस्टर आफ़ गवर्नमेंट सर्विसिज, और मिनिस्टर रिस्पांसिबल फॉर मल्टी-कल्चरलिज्म, ह्यूमन राइट्स, स्पोर्ट्स एण्ड इमीग्रेशन के रूप में भी कार्य किया।

ब्रिटिश कोलंबिया और कनाडा तथा मांट्रियल में इंडो-कनाडियन समुदाय इस खुशी में शामिल हुआ तथा तन, मन, धन से इसमें भाग लिया।

III. आयरस बारेटो

श्री आयरस बारेटो कैमिकल इंजीनियर हैं। आपने वर्ष 1968 से मुम्बई में एस्सो रिफाइनिंग कम्पनी, इण्डिया में अपने कैरियर की शुरूआत की। वर्ष 1974 में आप शेल डि वेनेजुएला चले गए तथा यहां आपने अनेक प्रतिष्ठित पदों पर कार्य किया जैसे :—प्रबंधक, रिफाइनिंग एण्ड पेट्रोकेमिकल आपरेशन-नियंत्रण, पी डी वी एस ए, विनिर्माण प्रबंधक, कार्डन रिफाइनरी और महाप्रबंधक, रिफाइनिंग तथा पेट्रोकेमिकल, अनुसंधान एवं विकास (इन्टीवैप सहित)। वर्ष 1966 से 1998 तक आपने विनिर्माण-योजना तथा पी डी वी एस ए कॉरपोरेट कार्यालय के कॉरपोरेट विषयों का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया। वर्ष 1999 में, आपको पेक्विवेन, सिटगो तथा प्रोएस्का-बोर्ड का भी सदस्य नियुक्त किया गया। सितंबर, 1999 से, आप पी डी वी एस ए के निदेशक बोर्ड के सदस्य हैं।

विकसित देशों में उभरता जातीय विद्वेष

—हरिकृष्ण निगम

अमेरिका आज विश्व का सबसे शक्तिशाली देश है—आर्थिक रूप से भी और सैन्यशक्ति की दृष्टि से भी। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी उसका वर्चस्व और दबदबा सर्वविदित है। पर उसके अपने पिछवाड़े क्या हो सकता है इस पर बहुधा हमारी दृष्टि नहीं जाती है। सारी दुनियां को उदार और सुसंस्कृत समाज या 'सिविल सोसाइटी' का उपदेश उसकी विदेश नीति से जुड़ा हुआ है पर उसकी अपनी जातीय भेद भाव और रंगभेद की समस्याएं दशकों से सुलझ न सकी हैं।

अश्वेत नागरिकों की तुलना में ऐंग्लो-सैक्सन और काकेशियन मूल के पुराने अप्रवासियों का वर्चस्व इतना गहरा है वहां भी अल्पसंख्यकों के अधिकारों की चर्चा भेदभावपूर्ण न्यायव्यवस्था और मानवाधिकार के हनन के रूप में होती रहती है। अमेरिका पिछले दो सौ वर्षों में लंगभग पूरा का पूरा अप्रवासियों का राष्ट्र बना हुआ है। वहां भाषायी विविधता भी है, श्वेत-अश्वेत की रंगभेद की नीति के कारण और जातीय असहिष्णुता की वजह से समय समय पर हिंसा के व्यापक दौर भी चल चुके हैं। वहां के मूलवासी रेड इण्डियनों के अलावा हिस्पेनिक, मेक्सिकी ओर स्पेनी मूल के नागरिक आज भी अपने को मुख्य धारा से अलग महसूस करते हैं।

वैसे अमेरिका आज भी अपने को विभिन्नताओं का महागलन पात्र-ग्रेटमैल्टिंग पॉट-और सलाद के प्याले—सालड बोल के रूप में विश्वभर में एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता है और व्यापक आर्थिक सम्पन्नता के कारण इसमें बहुत कुछ सफल भी हुआ है। पर आज भी अश्वेतों के अलावा ऐसे अनेक समूह हैं जो रंग भेद और भाषायी दबावों के साथ आर्थिक विपन्नता के कारण अपने को समाज के हाशिए पर आया देख रहे हैं। इसके कारण कई बार हिंसाओं का दौर भी सतह पर आ चुका है। ये अमेरिका की अन्दरूनी कमजोरियां हैं जिनकी अभिव्यक्ति बहुत बार हिंसा के रूप में प्रकट होती रही हैं।

साठ के उत्तरार्ध में न्यूयार्क से लेकर डेट्रायट तक 70 से अधिक नगर रंगभेद के खिलाफ अश्वेतों के विद्रोह की लपेट में आ गए थे। मार्टिन लूथर किंग की हत्या के रूप में उनके सत्याग्रह के प्रयत्नों ने कीमत अदा की थी। अश्वेत मुस्लिमों के पृथकतावादी आन्दोलन, 'काली शक्ति' का उभरना और प्रतिक्रिया के रूप में नस्लवादी कु क्लेक्स क्लान समूह का आतंक—ये अमेरिकी सामाजिक जीवन के कटु सत्य रहे हैं।

1992 के लास एन्जेलिस के दंगे अमेरिकी आधुनिक इतिहास में जातीय हिंसा का सबसे बड़ा दाग रहा है। इस घटना में एक अश्वेत मोटर चालक रोडनी किंग को पुलिस ने निर्दयता से पीटा था और एक अमेरिकी फोटोग्राफर ने रात का वह वीभत्स दृश्य दूर से अपने घर से

फिल्मांकित किया था। इससे भड़की अराजकता में अप्रैल के उन दिनों में 53 व्यक्ति मारे गए थे, लगभग 2500 व्यक्ति घायल हुए, आगजनी की 1000 से अधिक वारदातें हुईं और बीमा कम्पनियों को एक अरब डालर के दावों का भुगतान करना पड़ा था। इस बहुजातीय व्यापक हिंसा ने अमेरिका के मानव अधिकारों की बातों के लिए जैसे नैतिक आधार छीन लिया हो।

अमेरिका में आज भी ऐसे लेखक और विचारक हैं जो एशियाई और भारतीय मूल के लोगों की सफलता पर चिन्तित हैं। वे यह भी कह रहे हैं कि सन् 2050 तक अमेरिकी श्वेत हिस्पैनिक, मेक्सिकी या एशियाई समूहों की बढ़ती जनसंख्या दर के कारण अल्प संख्यक बन जाएंगे। केलीफोर्निया सारे अमेरिका का पहला राज्य है जहां अब तक के श्वेत बहुसंख्यक अल्पसंख्यक बन गए हैं। अमेरिकी जनगणना ब्यूरो के हाल के समाचार के अनुसार केलीफोर्निया की कुल जनसंख्या में गैर-हिस्पैनिक श्वेत अब मात्र 49.8 प्रतिशत है। प्रशासन चिन्तित है कि वहां अधिक से अधिक मेक्सिकी और एशियाई मूल के लोग पहुंच चुके हैं। एक लेखक के अनुसार यह अघुलनशील समूह श्वेतों की संख्या में असंतुलन ला चुका है तथा जिसे नस्लवाद को आगे आने वाले वर्षों में बढ़ावा मिल सकता है।

कुछ लोग राष्ट्रपति क्लिन्टन के प्रस्तावित लेटिन इमिग्रेंट एण्ड फेयरनेस विधेयक पर भी रुष्ट हैं जिससे लगभग पचास से साठ लाख अवैध या छिपकर रहने वाले अप्रवासियों में से लगभग 10 लाख को शरण दे दी जाएगी। दक्षिणी-पश्चिमी अमेरिकी राज्य जिनकी सीमा मेक्सिको को छूती है वैसे भी सांस्कृतिक रूप से मेक्सिको के नजदीक है। अमेरिकी जनसंख्या रिपोर्ट के साथ साथ योरोप के देश खासकर जर्मनी और आस्ट्रिया भी चिन्तित हैं कि एंग्लो-सैक्सन जनसंख्या कम हो रही है। इस मानसिकता से संस्कृति और परम्पराओं की विविधता या 'प्लुरैलिटी' की बात फीकी होती जा रही है। ये वही लोग हैं जो भारत के उभरते राष्ट्रवाद के कारण यहां की विविधता के खतरे कारण देश की भत्सना करते हैं। यह एक कटु सत्य है कि इटालवी, ग्रीक, पोल, यहूदी, तुर्क और स्लाव जातियों को जो अमेरिका और योरोप के कई देशों में अल्पसंख्यक हैं उन्हें शक की नजर से देखा जाता है।

अमेरिका में जातीय घृणा और हिंसा किसी कानून से नहीं रोकी जा सकी है। इसने इतनी गहरी खाई पैदा की है कि ऐसी ही एक हिंसक घटना पर इडाहो के एक न्यायाधीश को नई तरह की सजा देनी पड़ी। सारे जातीय समूह को दण्ड के रूप में आर्थिक और कानूनी क्षतिपूर्ति के लिए हाल में हिंसा के शिकार व्यक्ति को हरजाना देना पड़ा। एक कुख्यात और कट्टर श्वेत संघटन 'आर्यन नेशन' जो 1972 से इडाहो में अश्वेतों पर हमला करता था और घृणा फैलाने में सक्रिय था उसके विरुद्ध ऐसा निर्णय अभी हाल में सुनाया गया है। सन् 1983 में राबर्ट मैथ्यूज नामक इस समूह के सदस्य ने कई राज्यों में अपराध किए और डेनवर में एक टॉक-शो के यहूदी उद्घोषक एलनबर्ग की हत्या कर दी थी। मैथ्यूज स्वयं 1984 में वाशिंगटन में हिंसा की वारदात में मारा गया था और तब से अपने समूह में रोलमॉडल और आदर्श माना जाता था। इस समूह द्वारा जाति भेद के आधार पर दर्जनों बार गोलीबारी की घटनाएं हुई हैं। अमेरिकी बन्दूक संस्कृति के कारण

जातीय हिंसा में एक नया आयाम जुड़ चुका है। इडाहो के न्यायालय ने एक ऐसी ही दूसरी घटना में आरोपी की सम्पत्ति को जब्त करने का आदेश दिया है। अमेरिका में अलाबामा एक ऐसी दूसरी जगह है जहां जातीय हिंसा के बीज दशकों से बोए गए हैं। कुक्लक्स क्लान नामक अतिरेकी श्वेत संगठन समय समय पर अश्वेतों के विरुद्ध हिंसा और हत्याओं का दौर चला चुका है।

आज अमेरिका में दक्षिण एशियाई मूल के लोगों के विरुद्ध भी हिंसा की घटनाएं काफी बढ़ चुकी हैं। वाशिंगटन में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार एशियाई अमेरिकियों के विरुद्ध 1998 में 429 वारदातें हुईं। इस तरह की घटनाएं सन् 1997 में 481 थीं। राष्ट्रीय एशिया-प्रशान्त अमेरिकी कान्सैरियशियम—एन०ए०पी०एच०एल०सी०—की हाल में जारी जातीय हिंसा सम्बन्धी रिपोर्ट में अमेरिका में इस प्रकार की बढ़ती घटनाओं पर चिन्ता व्यक्त की गई है। रंगभेद के आधार पर बढ़ती अश्वेतों के अलावा सफल और सम्पन्न अप्रवासियों का जीवन-स्तर भी वहां श्वेत नागरिकों में नस्लवाद को बढ़ावा दे रहा है— इन उपलब्ध अधिकारिक सूचनाओं के अलावा वे शिकायतें जो भारतीय और दूसरे एशियाई मूल के लोग दर्ज नहीं कराते हैं और कभी-कभी अनदेखा कर देते हैं सैकड़ों की तादाद में हैं।

इस रिपोर्ट के अनुसार 1998 में ही न्यू जर्सी में 17, केलीफोर्निया में 11, न्यूयार्क में 4 और कोलम्बिया जिले में 3 तथा मिनीसोटा और मिसूरी में एक एक गम्भीर हिंसक घटना हुई थी। जातीय विद्वेष के कारण दक्षिणी एशिया के लोगों को जिनमें भारतीय, पाकिस्तानी, वियतनामी और चीनी भी शामिल हैं अधिक से अधिक निशाना बनाया जा रहा है। अमेरिकी समाचार पत्रों के अनुसार हाल में न्यूयार्क के साउथ-ओजोन पार्क में तीन श्वेत लोगों ने निशि महाराज नाम के 20-वर्षीय भारतीय केरेबियन मूल के युवक को गालियां देकर बेस-बाल बैट से पीटकर अधमरा कर दिया। पकड़े हुए संदिग्ध व्यक्ति ने खुले आम अपने पड़ोस में रहने वाले सभी भारतीयों को वहां से कहीं दूर रहने की धमकी दी थी।

हाल में दूसरी घटना मेरीलैण्ड के कैम्प सिंगसस में सारी रात खुले रहने वाले डंकन डोनट्स नामक स्टोर में हुई थी जिसमें ट्रोन टायरोन नामक व्यक्ति ने मुकेश पटेल, कनु पटेल और आश्विन पटेल को बन्दूक से निशाना बनाने की कोशिश की। उनके अच्छी तरह अंग्रेजी न बोल पाने के लिए अपशब्द कहे और गैसोलीन छिड़ककर आग लगा दी और साथ में काउन्टर से सारी रकम लूट ली। तीन भारतीयों में से केवल एक जीवित बच पाया।

इसी तरह अगस्त 1998 में केलीफोर्निया के आर्टीसिया नामक स्थान पर पांच एशियाई लोगों पर उन्हें जातीय गालियां देते हुए उन पर एक जहरीला द्रव स्प्रे कर कुछ श्वेत भाग गए। जब उन्होंने स्थानीय पुलिस को फोन किया वही नस्लवादी श्वेत फिर बन्दूकों से लैस होकर आ गए और उनको बुरी तरह पीटा। ऐसा प्रकरण अमेरिकी पुलिस घृणा-प्रेरित अपराधों के वर्ग में रखती है। ताईवान में जन्मे प्रसिद्ध अमेरिकी अणु वैज्ञानिक वेन हो ली, जिन्होंने अमेरिकी नागरिकता भी ली, हाल में तथाकथित जासूसी के अपराध में अल्बुकर्क जेल में रखे गए थे। बाद में उन्होंने

निपराध मानकर छोड़ दिया गया था। लास एमोस की अणु कार्यशाला में काम करते समय उन पर आरोप लगाया गया था कि वे गोपनीय सूचनाएं घर पर लाते थे। छूटने के बाद वेन होली ने अमेरिकी प्रशासन पर आरोप लगाया कि वे जातीय भेदभाव के शिकार थे और क्योंकि वे चीनी मूल के थे इसलिए उस पर इसी आधार पर शक किया जा रहा था। दूसरे एशियाई अमेरिकियों ने भी इस आरोप का समर्थन किया है कि अश्वेत अमेरिकियों विशेषकर एशियाई वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों की जातीय आंकड़ों— प्रोफाइलिंग—पर आधारित सूचनाएं एफ.बी.आई.—फेडरल ब्यूरो आफ इन्वेस्टीगेशन करती है।

दूसरे विकसित देशों जैसे इंग्लैण्ड, जर्मनी और आस्ट्रिया में भी एशियाई और तुर्क मूल के लोगों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। पश्चिमी जर्मनी के सोगिंगलन नामक नगर में 1993 में दक्षिणपंथी युवकों ने पांच तुर्की महिलाओं को एक घर में बंद कर जिन्दा जला दिया था। पूर्व प्रौद्योगिकी मंत्री और क्रिश्चियन डेमोक्रेट्स दल के नेता योरगन रूटजर्स ने हाल में जर्मन बच्चे, भारतीय इंजीनियर 'नहीं' नामक आन्दोलन चलाया था। वहां की सरकार द्वारा भारतीय कम्प्यूटर विशेषज्ञों को आमंत्रित करने पर इस निर्णय के विरुद्ध उन्होंने काफी हवा दी। ऐसे भी जर्मनी में बसे तुर्क, स्लाव और सबों को जो वहां के नागरिक हैं और दशकों से काम करते हैं उनके निजी धार्मिक और सामाजिक रीतिरिवाजों प्रशासन प्रतिबंध भी लगा चुका है—जैसे मस्जिदों को होटलों या पर्यटक स्थलों से दूर बनाने की अनुमति अथवा स्कूलों में मुस्लिम बच्चों को पारम्परिक वेशभूषा में प्रवेश की मनाही। आस्ट्रिया में तो वर्तमान सत्तारूढ़ दल 'फ्रीडम पार्टी' गैर-जर्मन अप्रवासियों को देश से निकालने की भी बात कर चुकी है विकसित देशों की इस उभरती मनोवृत्ति की हमारे मीडिया में चर्चा यदा कदा ही होती है और वे केवल अपने देश में ऐसी छोटी सी बातों को विश्वभर में प्रचारित करने का मौका ढूँढते हैं।

गत वर्ष लन्दन में भी बंगलादेशी और दूसरे एशियाई समुदायों पर व्हाइट वुल्वज जैसे नवनाजीवादी एवं अतिरेकी युवा संगठनों पर कई बार हमले किए थे। ऐसे आक्रामक समूह खुले आम यहूदियों और अश्वेतों को जिनमें अधिकतर एशियाई मूल के लोगों को धमकी भरे पत्र भेजते हैं और हिंसा की घटनाओं में भी लिप्त रहे हैं। ब्रिक्सटन, साउथ हाल, ब्रिकलेन और दूसरे कई इलाकों में दहशत का माहौल बनाने की कोशिश पूरी करते हैं। टिम सेबास्टियन जैसे बी.बी.सी. के विख्यात परिचर्चा कराने वाले उद्घोषक ने एक कार्यक्रम प्रसारित किया था जिसमें कुछ प्रमुख व्यक्ति भी यह कह रहे थे कि अप्रवासियों के कारण अंग्रेजियत को खतरा बढ़ रहा है और यह इंग्लैण्ड के लिए चिन्ता का विषय है।

इस संकीर्ण मनोवृत्ति का नग्न-नृत्य विकसित देशों में भी आज सतह पर आ रहा है जिस पर हमारा मीडिया आंखें मूंदना ही पसन्द करता प्रतीत होता है। उनके लिए हमारे आकलन का मानदण्ड आज भी बदला हुआ है।

कंप्यूटर प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि

—डॉ० अमर सिंह वधान

आज सूचना विस्फोट का युग है। शिक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य, प्रशासन, सुरक्षा, वित्तीय संस्थाओं आदि में सूचनातंत्र का बहुत प्रयोग और महत्व बढ़ गया है। कंप्यूटर प्रौद्योगिकी की आम आदमी तक पहुंच बन रही है। जापान जैसे देशों ने तो ग्लोबल नेटवर्क की आवश्यकता को महसूस किया है तथा वे इस दिशा में अग्रसर भी हैं। दिलचस्प है कि कंप्यूटरों के बारे में जैसा डर अपने यहां दिखता है, वैसा डर एक समय में यूरोप और अमरीका में भी रहा है।

गौरतलब है कि कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ, जिनकी भाषा रोमन लिपि पर आधारित थी। शायद यही कारण है कि अन्य भाषाओं में कंप्यूटर का विकास एवं प्रयोग कुछ देरी से हुआ। लेकिन इस बात का कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोमन लिपि में लिखी अंग्रेजी भाषा कंप्यूटर के लिए आदर्श भाषा मानी जाए। दरअसल, कंप्यूटर की भाषा तो दो संकेतों (0+1) वाली अपनी स्वतंत्र भाषा है और उसी में वह रोमन एवं रोमनोत्तर भाषाओं को ग्रहण करके अपना सारा काम करता है। इस संदर्भ में देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक, व्यवस्थित, परिपक्व एवं संपन्न लिपि है। ध्वन्यात्मक दृष्टि से यह अधिक सुनियोजित लिपि है। नागरी लिपि कंप्यूटर में प्रयोग के लिए अधिकतम उपयुक्त है। अतः नागरी लिपि में कंप्यूटर पर कार्य करना कठिन नहीं है। कंप्यूटर विशेषज्ञों का तो यहां तक मानना है कि अपने वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक स्वरूप के कारण नागरी लिपि कंप्यूटर के लिए सर्वश्रेष्ठ लिपि है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारत में कंप्यूटर 60 के दशक में आया। लेकिन इसके प्रयोग की गति 80 के दशक तक धीमी रही। भारत सरकार ने 1980 से कंप्यूटर के प्रयोग को तेजी से प्रोत्साहन देना शुरू किया और आने वाले समय में कंप्यूटर के प्रयोग एवं महत्व को समझते हुए 'राष्ट्रीय सूचना केन्द्र' संस्थान की स्थापना की। भारतीय रिजर्व बैंक ने 1988 में 'रंगराजन समिति' गठित की, जिसने अपनी रिपोर्ट में यह विशेष सुझाव दिया कि भारतीय रिजर्व बैंक तथा वित्त मंत्रालय, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय से अनुरोध करें कि सरकारी कार्यालयों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं में कंप्यूटरों को देवनागरी में करने के मुद्दे पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाए।

नतीजे के तौर पर कंप्यूटर में देवनागरी के प्रयोग का श्रीगणेश हुआ। आज स्थिति यह है कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों, बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, उपक्रमों एवं अन्य कार्यालयों में ई-मेल, वेबसाइट, इंटरनेट, वी-सेट आदि सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यमों में नागरी लिपि का प्रयोग किया जा रहा है। सर्वप्रथम, भारतीय रिजर्व बैंक ने देवनागरी में ई-मेल भेजने की शुरुआत की।

इसके पश्चात् सरकारी क्षेत्र के बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, उपक्रमों, संगठनों तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों ने भी देवनागरी में ई-मेल भेजने शुरू कर दिए हैं।

देवनागरी में वेबसाइट भी जारी की जा रही है। इंटरनेट पर नागरी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। वी-सैट पद्धति में भू-आधारित वी-सैट विभिन्न केन्द्रों पर लगाए जाते हैं, जो सीधे सैटेलाइट से जुड़े होते हैं। यद्यपि इन वी-सैटों पर केवल अंग्रेजी में कार्य किया जा रहा है, लेकिन इन केन्द्रों पर द्विभाषी सॉफ्टवेयर लगाकर नागरी में डाटा प्रेषित करने में कोई कठिनाई नहीं है। वी-सैट से नागरी में संदेश प्रेषण के लिए सर्वर में देवनागरी का फोन्ट लगाना जरूरी है और यह संभव भी है।

देवनागरी में सर्वप्रथम कंप्यूटरों में शब्द संसाधन का कार्य ही आरंभ हुआ। अब भारतीय और विदेशी कंप्यूटर कंपनियों ने शब्द संसाधन के अनेक पैकेज विकसित किए हैं। जिनमें नागरी में तथा द्विभाषिक रूप में विभिन्न शब्द संसाधन कार्य किए जा सकते हैं। इनमें कुछ तो डॉस पर कार्य करने के लिए हैं तो कुछ विंडोज पर परिवेश में नागरी और अंग्रेजी में कार्य करने में सक्षम हैं जहां शब्दरत्न और अक्षर डॉस में कार्य करने के लिए हैं, वहीं लीप, आकृति, आकृति ऑफिस, एपीएस जैसे पैकेज विंडोज के लिए भी हैं। कुछ पैकेज माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस की सुविधाओं को लाभ उठाकर 'वर्ड', 'एक्सेल', 'एक्सपलोरर' और पावर प्वायंट में नागरी और अंग्रेजी में काम करने की सुविधा देते हैं। दिलचस्प है कि सॉफ्टवेयर विकल्प के अंतर्गत कंप्यूटर में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। ये पैकेज फ्लॉपी डिस्क के रूप में उपलब्ध होते हैं। इसमें भी रोमन लिपि के सभी सॉफ्टवेयर पैकेजों में देवनागरी में कार्य किया जा सकता है।

कंप्यूटर प्रौद्योगिकी की दृष्टि से नेटवर्क पर देवनागरी लिपि का सरलता पूर्वक उपयोग हो सकता है। देवनागरी लिपि को ग्राफिकल यूजर इंटरफेस के माध्यम से नेटवर्क में प्रयोग में लाने योग्य आसानी से बनाया जा सकता है। उसके लिए जरूरी बात यह है कि जिस सॉफ्टवेयर पैकेज में संदेश भेजा जा रहा है, वही पैकेज संदेश प्राप्त करने वाले कंप्यूटर में भी लगा होना चाहिए, तभी संदेश का प्रिंट लिया जा सकता है। लेकिन स्क्रीन पर पढ़ने के लिए प्राप्तकर्ता के पीसी पर देवनागरी या द्विभाषिक सॉफ्टवेयर होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि जीयूआई में प्रेषित संदेश चित्र के रूप में होता है। मिसाल के तौर पर यदि ई-मेल नागरी में भेजना हो तो संदेश भेजने वाले कंप्यूटर में विंडोज एप्लिकेशन पर कार्य करने योग्य देवनागरी सॉफ्टवेयर लोड कर संदेश देवनागरी में प्रेषित किया जा सकता है। लेकिन संदेश प्राप्त करने वाले पीसी पर भी विंडोज परिवेश पर कार्य करने योग्य देवनागरी सॉफ्टवेयर का होना नितान्त आवश्यक है, जिससे संदेश देवनागरी में प्राप्त किया जा सकता है।

कंप्यूटर पर शब्द संसाधन का कार्य देवनागरी में उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। शब्द संसाधन हेतु द्विभाषिक सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर दोनों बाजार में उपलब्ध हैं। इस संदर्भ में लीप, आई-लीप,

श्रीलिपि, प्रकाशक, आकृति, आकृति ऑफिस, शब्दरत्न, इंडिका, मल्टीस्क्रिप्ट डॉस आदि देवनागरी में कई सॉफ्टवेयर मौजूद हैं, जिनसे देवनागरी में शब्द संसाधन का कार्य पूरी कुशलता एवं सफलता से किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि सी-डेक पुणे ने “लीला प्रबोध” नामक एक सॉफ्टवेयर विकसित किया है, जिसकी सहायता से प्रबोध स्तर का हिंदी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस सॉफ्टवेयर में देवनागरी में लिखने और उच्चारण करने की दोनों सुविधाएं मौजूद हैं। इस सॉफ्टवेयर से देवनागरी वर्ण की लेखन विधि, ग्राफिक्स के रूप में चित्रित होती है। इसी प्रकार “लीला हिंदी प्रवीण” तथा “लीला हिंदी प्राज्ञ” सॉफ्टवेयरों का विकास डॉस, यूनिक्स और विंडोज परिवेश में सी-डेक, पुणे द्वारा किया जा रहा है। इन सॉफ्टवेयरों की सहायता से कोई भी प्रशिक्षार्थी हिंदी स्वयं कंप्यूटर पर सीख सकेगा।

यूं तो तारधरों में देवनागरी में इलेक्ट्रो-मैकेनिकल टेलीप्रिंटर पहले से ही उपलब्ध हैं। लेकिन सीएमसी लिमिटेड ने पीसी एक्स टी आधारित एक ऐसा संचार टर्मिनल बनाया है, जिसे टेलीप्रिंटर एवं टेलेक्स मशीनों के साथ जोड़कर देवनागरी में संदेश भेजे और प्राप्त किए जा सकते हैं। इसी क्रम में मैसेज स्विचिंग सिस्टम संचार प्रणाली का एक ऐसा सॉफ्टवेयर है, जिसमें टेलीप्रिंटर लाइनों से प्राप्त संदेशों के संभरण, अग्रेषण और सिंचन करने की क्षमता है। एक केन्द्र पर देवनागरी में तैयार की गई खबरों को उससे जुड़े अनेकों केन्द्रों पर प्राप्त किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कंप्यूटरों पर देवनागरी लिपि में प्रिंटिंग के लिए डॉट मैट्रिक्स प्रिंटर, डेस्कजेट प्रिंटर अथवा लेजर प्रिंटर का प्रयोग ही किया जाना चाहिए। उच्च गति की प्रिंटिंग के लिए लिपि एम. टी.-691 का प्रयोग देवनागरी लिपि में लगभग 400 लाईन प्रतिमिनट की गति से किया जा सकता है। सामान्यतः देवनागरी लिपि में प्रिंटिंग की गति अंग्रेजी की तुलना में लगभग एक तिहाई रह जाती है।

इधर “सेंटर कंप्यूटर एजुकेशन” ने सी. डी. के अंतर्गत “आओ हिंदी पढ़ें” को विकसित किया है। इसमें संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण सीखने और पंचतंत्र की कहानियों को प्रस्तुत किया गया है। यह मल्टीमीडिया सी. डी. देवनागरी लिपि में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण सिखाता है। सर्वनाम सी. डी. में परिशुद्ध देवनागरी टाइपिंग के लिए देवनागरी कुंजीपटल विन्यास और देवनागरी शब्द संसाधक शामिल है। उपर्युक्त व्यवस्थाओं के बावजूद कंप्यूटर प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य भी ध्यान आकृष्ट करते हैं।

1. अंग्रेजी का मुकाबला करने के लिए देवनागरी में डायनामिक फोन्ट का उन्नयन एवं उपयोग बहुत आवश्यक है। यह फोन्ट अनुकूल भी होना चाहिए।
2. नागरी लिपि के वर्तनी पक्ष को सुधारने की अभी भी गुंजाइश है।
3. भ्रम पैदा करने वाले हिंदी शब्दों का मानकीकरण किया जाए।
4. अंग्रेजी मानसिकता को तिलांजलि देनी होगी। हिंदी में गतिमान एवं उत्कृष्ट सॉफ्टवेयर विकसित करने की आवश्यकता है।

5. कंप्यूटरों पर देवनागरी लिपि में प्रिंटिंग की गति रोमन लिपि में प्रिंटिंग की गति से लगभग एक तिहाई रह जाती है। इस दिशा में शोध कार्य जरूरी है।
6. "देवनागरी लिपि और कंप्यूटर" विषयक वित्तीय एवं प्रशासनिक निर्णयों को निष्ठा एवं इच्छा शक्ति से अमल में लाना आवश्यक है।
7. प्रयोगकर्ता, उत्पाद और उत्पादक में स्वस्थ संधि-स्थल होना चाहिए। तकनीक में यदि देवनागरी लिपि की बारीकियां छूट जाएंगी तो अपेक्षित परिणाम हासिल करना कठिन होगा।
8. कंप्यूटर की चुनौतियों और धमकियों का सामना करने के लिए देवनागरी सॉफ्टवेयरों का व्यापक स्तर पर विकास एवं प्रयोग करना होगा।
9. देवनागरी को भी सूचना प्रौद्योगिकी का उच्चतम एवं सफल माध्यम बनाने के प्रयास करने होंगे।
10. प्रयोगकर्ता की और से कंप्यूटर में देवनागरी लिपि के प्रयोग संबंधी प्रतिसूचना भी आनी चाहिए।

इसमें कोई शक नहीं कि कंप्यूटर क्रांति के इस युग में अंग्रेजी का वर्चस्व पहले से अधिक बढ़ गया है और 90 प्रतिशत से भी ज्यादा सूचनाएं अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं। चूंकि हिंदी भी व्यावसायिकता से जुड़ी हुई है, अतः देवनागरी लिपि के संदर्भ में डायनामिक फोन्ट का प्रयोग किया जाना चाहिए। कंप्यूटर प्रौद्योगिकी ने देवनागरी के सामने कई चुनौतियां पहाड़ की तरह खड़ी कर दी हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए न केवल मानसिकता को बदलना जरूरी है, बल्कि नागरी लिपि विषयक विनोबा के संदेश को जीवन में उतारना भी अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य अधिकारी (राजभाषा) सिंडिकेट बैंक, आंचलिक कार्यालय 6 भगवान दास रोड, नई दिल्ली-110001

रामचरितमानस में तान्त्रिक संकेत—भाग-I

—डा. (कु.) राजकुमारी शर्मा 'राज'

प्रत्यक्षद्रष्टा एवं तत्त्वदर्शी महापुरुष गोस्वामी जी का रामचरितमानस साधना का एक उत्कृष्ट स्रोत है। इस रहस्य का उद्बोध हमें "जो सुमिरत सिधि होय" तथा "मंगलानां च कर्तारी वन्दे वाणी विनायकी" इत्यादि मांगलिक अभिव्यक्तियों से प्रतीत होता है। "सिधि होय" का तात्पर्य चतुर्दश सिद्ध विद्याओं से है। यह चौदह सिद्ध विद्याएं साधकों के लिए उत्कृष्ट विद्या की उपलब्धि में सहायिका होती हैं। काली, तारा, सुन्दरी, भैरवी, भुवनेश्वरी आदि चौदह शक्तियां हैं, जो समस्त साधना की उत्कृष्ट विद्या की प्रतीक हैं। इन सिद्ध विद्याओं की साधना के लिए भी सर्वप्रथम गणेश अभ्यर्थन आवश्यक है। इसका मूल रहस्य स्वामी जी ने निम्नांकित प्रकार से अभिव्यक्त किया है। सर्वोच्च अथवा परमोच्च उपलब्धि के लिए तान्त्रिक साधना हमारे देश में आदिकाल से चली आ रही है। हिंदी साहित्य में महाकवि तुलसीदास ने ही सर्वप्रथम अपने रामचरितमानस में इसे उत्कृष्ट स्थान प्रदान किया है। यद्यपि रामचरितमानस की रचना से पूर्व हिंदी का जो प्राचीन सहित्य है, उसमें भी सिद्ध, योगियों आदि की साधना का संकेत सामान्य रूप से प्राप्त होता है, किन्तु वह अचोर पंथियों, नाथ पंथियों कनफटे योगियों एवं मसानिक ओघड़ पंथियों का समुदाय था जो अनुत्कृष्ट सा प्रतीत होता है।

साधक अपनी साधना आरम्भ करने से पूर्व शास्त्रीय पद्धति पर आधारित सिद्धान्त के अनुकूल सर्वप्रथम गणेश का स्मरण करते हैं। स्वामी जी ने भी अपनी काव्य साधना के आरम्भ में ही गणेश का स्मरण किया है। गणेश तन्त्र में तान्त्रिक पद्धतियों की जो अभिव्यक्तियां हुई हैं स्वामी जी ने उन्हें हृदयगम किया था।

तान्त्रिक साधक, साधना में विघ्न न हो इसलिए प्रथम गणेश की आराधना तत्पश्चात् शिव पार्वती और गुरु की आराधना करते हैं। स्वामी जी ने विघ्नराज के स्मरण के पश्चात् ही "भवानी शंकरी वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यन्तं बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।" के द्वारा ही शिव पार्वती की अभ्यर्थना का प्राथमिक रहस्य अभिव्यक्त किया है। तान्त्रिक साधक गुरु को शिव रूप में स्वीकार करते हैं। इसीलिए, शंकर और पार्वती के नमस्कार के अनन्तर ही "बन्दहुं गुरु पद पदुम परागा।" के द्वारा एक विशिष्ट स्थान गुरु को दिया है। जो तान्त्रिक गुरु पूजा के बिना ही अपनी साधना आरम्भ करते हैं उनकी साधना में विभिन्न प्रकार के विघ्न होने लगते हैं। इसका तन्त्र शास्त्र में उल्लेख है। यहां यह चिन्तीय तथ्य हमारे सन्मुख उपस्थित होता है कि जब राम ही स्वामी जी के लिए एकमात्र परम इष्टदेव है तो काव्य के आरम्भ में गणेश, शिव-पार्वती, गुरु तथा अन्त में "सिया राममय सब जग जानी" के रूप में राम का स्मरण करते हुए काव्य का आरम्भ क्यों किया है? इस रहस्य को गोस्वामी जी ने उपर्युक्त क्रम के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

तांत्रिक साधक इसी क्रम से अपनी साधना आरम्भ करता है। इष्टदेव की सिद्धि के लिए तन्त्र शास्त्रों में यही क्रम स्वीकार किया गया है। इसीलिए स्वामी जी का सिद्ध पुरुष होना परिलक्षित होता है।

शक्तितत्व और विद्यातत्व ये दोनों तत्व तांत्रिकों के रहस्यात्मक तथ्यों के साक्षात्कार के परमावश्यक तत्व माने गए हैं। स्वामी जी ने इन दोनों तत्वों का रहस्य “सियाराम मय सब जग जानी” इन पंक्तियों के द्वारा प्रस्तुत किया है। जगत्जननी सीता शक्तितत्व की प्रतीक है और राम विद्यातत्व के प्रतीक हैं। इन दोनों तत्वों के साक्षात्कार से ही समस्त जड़ एवं चेतन जगत् में आत्मतत्व प्रतिष्ठित होता है। शक्तितत्व और विद्यातत्व ही आत्मतत्व का परिज्ञान कराते हैं। “मानस” में जगत् जननी सीता शक्तितत्व के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। स्वामी जी ने कई स्थलों पर इसका निर्देश किया है। इस प्रसंग को उन्होंने उस स्थल पर निर्दिष्ट किया है, जहां मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम जगत्जननी सीता से कहते हैं:—

“सुनहु प्रिया ब्रत रूचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा ॥”

हे प्रिये! जब तक मैं निशाचरों का नाश करूं तब तक तुम अग्नि में निवास करो। सीता के अग्नि प्रवेश से लेकर सीता की अग्नि परीक्षा पर्यन्त राम के समस्त चरित तांत्रिक साधना की रहस्यमय विद्याओं के आधार पर ही घटित हुए हैं। अग्नि प्रवेश शक्ति से ही सम्भव है। जगत् जननी सीता का शक्ति रूप में प्रतिष्ठित होना इसी अग्नि प्रवेश के द्वारा ही प्रमाणित हो जाता है। अग्नि प्रवेश के पश्चात् ही सीता अपना माया का रूप धारण कर लेती है। मायाविनी रूपा सीता अम्बा की मोहिनी शक्ति है, जिसके द्वारा समस्त शक्ति सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न तथा गुण सम्पन्न जगत् को भी मोहित कर लेती हैं। अम्बा की मोहिनी शक्ति के आकर्षण में राम भी आबद्ध हो जाते हैं और मिथ्या स्वर्ण मृग को सच्चा स्वर्ण मृग समझकर धनुष बाण लेकर दौड़ पड़ते हैं। स्वामी जी ने प्रस्तुत प्रसंग को उपस्थित करते समय कई प्रकार की तांत्रिक अभिव्यक्तियों को स्पष्ट किया है। वशीकरण, आकर्षण और मारण आदि तांत्रिक प्रक्रियाओं का रहस्य स्वामी जी ने तत्-तत् स्थलों पर उद्धृत किया है। जगत् जननी सीता की मोहिनी शक्ति में राम आबद्ध हुए, स्वर्ण मृग पर उनका आकर्षण हुआ इत्यादि लीलाओं से पूर्व भी मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए तपोवन में जब राम गए तो उस समय राम ने यज्ञ विध्वंस करने वाले राक्षसों के ऊपर जिस बाण का प्रहार किया था, वह प्रहार घातक प्रहार नहीं था प्रत्युत उस प्रहार की प्रक्रिया दूरापसरण की क्रिया थी। यह अभिव्यक्ति स्वामी जी ने—

“मुनि मंख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा।
सत जोजन आयऊं छन माहीं। नित सन बयरू किए मल नाहीं ॥”

के द्वारा अभिव्यक्त की है। राम ने ऐसे बाण का प्रहार किया जिससे क्षणभर में राक्षस सौ-सौ योजन दूर पर फैंक दिए गए। इस प्रकार मोहन, आकर्षक, वशीकरण, मारण, उच्चाटन

आदि सभी तान्त्रिक क्रियाएं रामायण के द्वारा की जा सकती हैं, यदि वास्तविक साधक उपलब्ध हो तो।

शक्ति के दो रूप होते हैं। सौम्यरूपा एवं असौम्यरूपा। सौम्यरूपा अपार सौन्दर्य एवं आकर्षण रूप धारण करने वाली शक्ति होती है, जिससे आसुरी एवं तामसी शक्तियों का मोहन होता है। जगत् जननी सीता की सौम्य रूपा शक्ति से आकर्षित होकर रावण लाखों उपायों द्वारा भी धनुष यज्ञ में जनक के यहां अपने को विजयी न बना सका। इसी प्रकार जगदम्बा की सौम्यरूपा शक्ति से आकर्षित होकर आसुरी शक्ति के मद में रावण करोड़ों उपायों से अपने को न बचा सका। जगत् जननी सीता की सौम्यरूपा शक्ति के विभिन्न रहस्य स्वामी जी ने अनेक स्थलों पर विद्यातत्व की प्रतिमा के आधार पर अभिव्यक्त किए हैं। प्रस्तुत प्रसंग उस समय का है जब जनक के यहां सीता स्वयंवर हो रहा है और राम धनुष को तोड़ देते हैं, वहां पर उपस्थित सभी नृप गण सीता जी के सौम्यरूप को देखकर उनके आकर्षण में बंध गए, वे दुष्ट कपूत एवं मूढ़ मन में तमतमा रहे हैं, वे उठकर कवच पहन कर जहां-तहां गाल बजाने लगे।¹ कोई कहता था सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को पकड़ कर बांध लो। धनुष तोड़ने की इच्छा इस तरह से पूरी नहीं होगी। हमारे जीते जी राजकुमारी सीता को कौन ब्याह सकता है,² इत्यादि सभी प्रसंग जगदम्बा की सौम्यरूपा शक्ति के विभिन्न रहस्यों के द्योतक हैं।

राम सौम्यरूपा शक्ति के प्रभाव के कारण ही सर्वोत्तम नर श्रेष्ठ का रूप धारण कर लेते हैं। किष्किन्धाकाण्ड के आरम्भ में ही "माया मानसरूपिणौ रघुवरो"¹ के द्वारा इस अभिप्राय को अभिव्यक्त किया है। राम मायाशक्ति से समन्वित हैं जिसके कारण समस्त चराचर जगत् को मोहित कर लेते हैं। मायारूपी शक्ति जब सौम्य रूप में प्रतिष्ठित होती है तो जगत् में विभिन्न प्रकार की लीलाएं प्रदर्शित करने लगती हैं। लीलाएं प्रस्तुत करते समय ऐसा प्रतीत होता है मानों शुद्ध माया ही जगत् के तत्त्वों के बीच लिपटकर सत् एवं असत् रूपों को दिखाते हुए प्रस्तुत हो। अनेकों कौतुकों को उपस्थित करने वाला मायाकार पुरुष एवं जादूगर पुरुष का रूप धारण कर कोतुकपूर्ण एवं अदभूत लीलाएं राम प्रस्तुत करते हैं जो वाणी एवं समस्त इन्द्रियों से अगम्य हैं। जगत् जननी की सौम्यरूपा शक्ति के कारण ही राम जगत् में नर लीला प्रस्तुत करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कपिराज सुग्रीव का आदेश पाते ही समस्त वानरी सेना सीता की खोज में नदी, पर्वत, कन्दराओं को अबाध गति से पार करती हुई चली जा रही है। उन्हें प्यास लगी है, अतः हनुमान

1. तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे।
उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ-तहँ गाल बजावन लागे ॥

—बालकाण्ड

2. लेहु छड़ाय सीय कह कोऊ। धरि बांधहु नृप बालक दोऊ।
तोरे धनुष चाड नहीं सरई। जीवति हमहि कुअरि को बरई ॥

—बालकाण्ड

पानी की खोज में दौड़ते हुए किसी पर्वत की चोटी पर चढ़ जाते हैं। वहां उन्हें किसी गुफा के मध्य एक कौतुक दिखाई पड़ता है :

“चक्रवाक वक हंस उड़ाहीं ।
बहुतक खग प्रबिसहि तेही माहीं ॥”

चकवे, बगुले, हंस आदि पक्षियों को प्रवेश करते हुए देखकर सभी उस गुफा के निकट चले जाते हैं। वहां पर उन्हें एक उपवन, तालाब तथा एक मन्दिर दिखाई पड़ता है। उस मन्दिर में एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी दिखाई पड़ती है :

“दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कुंज ।
मंदिर एक रूचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ॥”

उप तपोमूर्ति स्त्री से कपिराज ने अपना समस्त वृत्तान्त कहा। उस तपोमूर्ति नारी ने भगवान् राम के कार्य करने के लिए अत्यन्त व्याकुल बन्दरों को जब देखा तब उसे बहुत करुणा आई और वन, उपवनों में भाँति-भाँति के सुन्दर फलों को खाकर अपनी बुभुक्षा शांत करने का आदेश दिया। आदेश पाकर उन्होंने स्नानादि क्रियाएं करके, अनेक प्रकार के फलों को खाकर अपनी बुभुक्षा को शांत किया। अन्त में उस तपोमूर्ति ने कहा जाओ अपने चक्षु बन्द करो तुम सीता को अवश्य पाओगे। चक्षु खोलने पर उन्होंने अपने को समुद्र के किनारे खड़े पाया। इस प्रकार समस्त कौतुक क्रियाओं की अधिष्ठात्री देवी जो तपोरूपा थी, वही सौम्यरूपा शक्ति की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। यह शक्ति उपासना के बल पर नाना सुखप्रद सांसारिक उपलब्धियों एवं आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रदान करती है। स्वामी जी ने इस सौम्यरूपा शक्ति के अनेक कौतुक अपने काव्य में अभिव्यक्त किए हैं।

असौम्यरूपा शक्ति का स्वरूप कैकेयी के कोप भवन के प्रसंगों में हम उद्धृत कर सकते हैं। कैकेयी की वेषभूषा और उसकी कठोर वाणी तथा नारी के भयावह स्वरूप, जिसमें विश्व की अनन्त असौम्यरूपता शक्तियों को दिग्दर्शन हमें प्राप्त होता है, जो असौम्यरूपा शक्ति का प्रतीक है। इनकी असौम्यरूपा शक्ति वस्तुतः प्रत्यक्ष रूप में असौम्य एवं बीभत्स तथा अस्पृहणीय प्रतीत हो सकती है। परन्तु अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर यह शक्ति भी परम रहस्योत्पादक प्रतीत होती है। जब दशरथ देवासुर संग्राम में आबद्ध होकर प्राण संकट की अवस्था में आ जाते हैं, तब ऐसे समय में रथ के मध्य भाग में धुरी के स्थान पर कैकेयी ने अपनी कनिष्ठा उंगली को स्थापित कर दिया था। परिणामस्वरूप दशरथ तभी शत्रुओं को पराजित कर सके। अम्बा की असौम्यरूपा शक्ति भी मनुष्य को अतुलित बलधाम सम्पन्न बना सकती है। इसी प्रकार सूर्पणखा, त्रिजटा, लंकिनी आदि के चरित्रों में हमें असौम्यरूप नारी के चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

1. मज्जनु कौनह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए ॥

—किष्किन्धाकाण्ड

2. मूद्दह नयन त्रिबर तजि जाहू। पेहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥

—किष्किन्धाकाण्ड

जगत् जननी सीता की प्रचण्ड लीलाओं को स्वामी जी ने अपने ग्रंथ में अनेक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

अम्बा की कठोर शक्तियाँ आसुरी शक्तियों को सतत पराजित करती रही हैं। ताड़का का स्वरूप धारण करना, सुरसा का रूप धारण करना लंकिनी एवं सूपर्णखा आदि के स्वरूपों में आसुरी शक्तियों के रूप दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु जगत् जननी सीता की सौम्यरूपता मोहिनी शक्तियों से आसुरी शक्तियाँ सदैव पराजित होती रही हैं। हम तान्त्रिक शक्ति के विविध रूपों की उपासना का ज्ञान सीता राम के उपासना मन्त्रों से प्राप्त करते हैं।

यह उपासना मंत्र सीताराम नाम का अद्भूत शक्तिदायक मंत्र है। इसके जप मात्र से साधक अतुल शक्तियों को प्राप्त कर सकता है। यह मंत्र उपासना के रूप में प्रतिष्ठित है। इस का क्रम तान्त्रिक सिद्धि के लिए विभिन्न रूपों में शास्त्रों में उपलब्ध होता है। “सीता” शब्द को “सोः” रूपा शक्ति के रूप में शास्त्रकारों ने अंकित किया है। “राम” शब्द को “रां” इस एकाक्षर मंत्र के रूप में उपासक तंत्रशास्त्रों में पाते हैं। “सोः” यह एकाक्षर मंत्र शक्तितत्व का प्रतीक है। “रां” यह एकाक्षर मंत्र विद्यातत्व का प्रतीक है। यह दोनों शक्ति एवं विद्यातत्व आत्मतत्व का बोध कराते हैं। उपनिषदों में इन दोनों एकाक्षर मंत्रों की विशद व्याख्या की गई है।

मेघनाद लक्ष्मण पर शक्ति बाण प्रहार करता है। इससे पूर्व मेघनाद अपनी मायामयी शक्ति साधना के बल पर रथारूढ़ होकर आकाश मार्ग से गमन करता हुआ रणक्षेत्र में पदार्पण करता है। जिसे स्वामी जी ने— “मेघनाद मायामयी रक्ष चढि गयउ आकाश” के द्वारा संकेतित किया है। बाणों के प्रहार से समस्त वानरी सेना को उसने तहस-नहस कर दिया है जब पवनपुत्र हनुमान ने क्रोधावेष में आकर पर्वत को उठाकर मेघनाद पर प्रहार किया तो वह आकाश में उड़ गया जिसका उल्लेख स्वामी जी ने निम्न प्रकार से किया है।

“महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा।।

अवात देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई।।”

हनुमान के बारबार ललकारने पर भी वह उनके निकट नहीं आया। प्रत्युत वह नीच बुद्धि से अपनी माया दिखलाने लगा। आकाश में चढ़कर अग्नि वर्षा करने लगा, पृथ्वी जल की धाराएं फूटने लगीं। अनेक प्रकार के पिशाच और पिशाचनियां मारो-काटो की ध्वनि करने लगीं। जब समस्त कपिगण मेघनाद की माया से व्याकुल हो उठे तो उन्हें ऐसी अवस्था में देखकर श्री राम मुस्कराने लगे एवं एक ऐसा बाण मारा जिससे उसकी समस्त माया नष्ट हो गई।¹

1. नभ चढि वरष बिपुल अगारा। महि ते प्रकट होहिं जलधारा।
नाना भांति पिशाच पिशाची। मारू काटु भूति योलाहिं नाची।।
चिप्टा पुय रूधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा।।
बरषि धूरि कोन्हेसि अधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा।।

—लंकाकाण्ड

कपि अकुलाने माया देखे। सब कर मरुन बना एहिं लेखे।।

लंकाकाण्ड में आसुरी माया का जो चित्र स्वामी जी न उपस्थित किया है उन चित्रों में हमें श्मशान साधना का वीभत्स रूप दृष्टिगोचर होता है। श्मशान साधक मेघनाद था जिसके कारण विभिन्न मायामयी शक्तियां उसके पास थीं।

श्मशान साधना का रहस्य लंकाकाण्ड में युद्ध के प्रसंग में स्वामी जी ने अभिव्यक्त किया है :

**मज्जहिं भूत पिशाच बेताला। प्रथम महा झोटिंग कराला ॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं ॥**

भयानक रूप एवं वीभत्स वर्णनों में भूत, पिशाच, योगिनी, यक्षिणी आदि की सिद्धियां भी पूर्ण रूप से साधना की एक आवश्यक अंग मानी जाती हैं। मानस में जिसका दिग्दर्शन निम्न प्रकार हुआ है:

**जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहिं। भूत पिशाच वधु नभ नंचहिं ॥
भट कपाल कर ताल बजावहिं। चामुण्डा नागा विधि गावहिं ॥**

योगिनियों का खप्पर में रक्त का भरना तथा भूत पिशाच की स्त्रियों का आकाश में नृत्य करना तथा चामुण्डा द्वारा योद्धाओं की खोपड़ियों का करतालवत बजाना, आदि सभी दृश्य श्मशान साधना के लिए आवश्यक रहस्य अभिव्यक्त हुए हैं।

मायावी रावण ने युद्ध क्षेत्र में अनेक प्रकार की माया का रूप धारण किया था। इन अभिव्यक्तियों में तांत्रिक साधना की कई रहस्यात्मक अभिव्यक्तियां दृष्टिगोचर होती हैं।

मायामय शक्ति एक अदृश्य शक्ति है। यह शक्ति समस्त जड़ चेतन तत्वों को देखती है और अपने प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा प्रचण्ड रूप धारण करके जगत् के विनाश में उद्यत हो जाती है। इस अदृश्य शक्ति को चेतन जगत् देख नहीं सकता। स्वामी जी ने इस अदृश्य शक्ति को—“जो मारइ तेहि को उन जाना” के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह मायामयी शक्ति विभिन्न रूप धारण करती है। कभी ब्याल रूप में अपने प्रचण्ड को अभिव्यक्त करती है। कहीं ब्रह्म शक्ति का रूप धारण करती हुई अनन्त रूपों में प्रकट होती है। भगवान् राम भी इस मायाशक्ति (नागपाश) में आबद्ध हो जाते हैं, जिसे स्वामी जी ने—

**“ब्याल पास वस भए खरारी।
स्वबस अनंत एक अबिकारी ॥”**

के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है। वस्तुतः राम मायामय शक्ति में आबद्ध नहीं होते। प्रत्युत नट के समान कपट वेष धारण करते हुए दिखाई देते हैं:

1. सर छांडइ होई लागहिं नागा।

“नट इव कपट चरित कर नाना।
सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ॥”

तांत्रिक साधक इन्द्रजाल के समान अपनी कोतुक क्रियाओं की सिद्धि के लिए मानस की इन पंक्तियों को अपनी उपासना का आधार बनाते हैं।

वृद्ध कपिराज जामवन्त को आसुरी शक्तियों को पराजित करने के लिए कई प्रकार की सिद्धियाँ सिद्ध हो चुकी थीं। जब मेघनाद ने शक्तिशूल (त्रिशूल) का जामवन्त पर प्रयोग किया तब जामवन्त ने शक्ति साधक का प्रचण्ड रूप धारण करते हुए उसी त्रिशूल से मेघनाद के ऊपर प्रहार किया। नागशूल, शक्तिशूल आदि अस्त्रों पर विजय प्राप्त करने के लिए ब्रह्मास्त्र विद्या की उपासना आवश्यक होती है। जब कपि सेना मेघनाद के वाणों से व्याकुल हो गई, तब देवर्षि नारद ने उपर्युक्त अवसर पर गारूड़ी शक्ति का प्रयोग किया, जो समस्त माया सर्पों की भक्षक बनी। इन समस्त साधनाओं का रहस्य स्वामी जी ने —

“यहां देवरिषि गरूड़ पठायो।
राम समीप सपदि सौ आयो ॥”

के द्वारा अभिव्यक्त किया है। तांत्रिक साधक इन पंक्तियों का आधार मानकर शक्ति की यदि उपासना करता है, तो उसे गारूड़ी शक्तियाँ मिलती हैं।

गोस्वामी जी ने तांत्रिक साधना की रहस्यात्मक गुत्थियों को अनेक स्थलों पर दर्शाया एवं सुलझाया है। रामचरितमानस में अजेय शक्ति प्राप्त करने की एक ऐसी साधना है, जो शक्तितत्त्व के साक्षात्कार करने पर प्राप्त होती है। यह शक्ति घोर मंत्रों के द्वारा महिष और महिष रूधिर की आहुति देते हुए की जाती है। जब देवर्षि नारद की गारूड़ी शक्ति से मेघनाद अभिभूत हुआ तब वह अपावन यज्ञ के निमित्त कन्दरा में प्रविष्ट होता है।¹ लक्ष्मण जयन्त, विभीषण तथा अन्यान्य चानरी सेना के साथ उस यज्ञ को विध्वंस करने जाते हैं।² उन्होंने वहां पर मेघनाद को उपर्युक्त साधनों से यज्ञ करते देखा जिसका दिग्दर्शन स्वामी जी ने बड़े मार्मिक ढंग से कराया है:

“जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा।
आहुति देत रूधिर अरू भैंसा ॥”

उपर्युक्त पंक्तियों में अजेय शक्ति की उपलब्धियों के लिए घोर मंत्रों की उपासना का विधि विधान तुलसी ने अभिव्यक्त किया है।

मायाशक्ति का साधक विभिन्न कौतुक उत्पादक शक्तियों की साधना करता है। कौतुक साधना योगिनी, यक्षिणी, यक्ष आदि की साधना के द्वारा होती है। इन शक्तियों की साधना से

1. तुलत गचउ गिरिवर कंदरा। करौ अजय मख अस मन धरा ॥

—लंकाकाण्ड

2. लल्लिमन संग जाहु सब भाई। करहु विधंस जग्य कर जाई ॥

—लंकाकाण्ड

साधक कोतुकदायी प्रभाव को प्राप्त करता है और प्रपंचात्मक, जगत् को छल, पाखण्ड, मिथ्या प्रपंचों से अभिभूत करने के लिए यक्षिणियों, योगिनियों आदि की सिद्धि करता है। मेघनाद सर्वप्रथम युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व अपनी कौतुक शक्ति की प्रतिभाओं को अभिव्यक्त करता है जिसका दिग्दर्शन "नाना भाँति पिसाच पिसाची" इत्यादि पंक्तियों द्वारा किया गया है।

साधना की दृष्टि से रामोपसना के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्तियां शास्त्रीय पद्धति पर रामचरितमानस में अभिव्यक्त हुई हैं। समस्त विश्व केवल शब्द मात्र में ही प्रतिष्ठित है। जो कुछ प्रत्यक्ष जगत् में दृष्टिगोचर होता है उन सबों में शब्द की ही सत्ता है। अतः दार्शनिक दृष्टि से समस्त जगत् केवल शब्द में ही अन्तर्निहित है। इसलिए, "शाब्दे ब्रह्माणि निष्णातः परब्रह्माधि-गच्छति" यह शास्त्र वचन प्रमाणित रूप से दार्शनिक स्वीकार करते हैं। अर्थात् शब्द ही ब्रह्म हैं, इस दृष्टि से समस्त जगत् 'राम' शब्द में ही अन्तर्लीन है। राम शब्द में केवल एकाक्षर मात्र निष्कर्ष रूप से प्रतिष्ठित है। तांत्रिक दृष्टि से 'रों' यह एकाक्षर मंत्र समस्त प्रकार की सिद्धियों का प्रदायक है। इसके एकलक्ष जपमात्र से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की शक्तियों को प्राप्त कर सकता है। यदि प्रणव के साथ संयुक्त करके इस मंत्र को जपा जाये तो यह समस्त अभिलषित वस्तुओं का प्रदायक हो जाता है। प्रणव के साथ "राम" यह द्वयक्षर मंत्र मुक्ति और भुक्ति का प्रदायक हो जाता है। यहीं द्वयक्षर मंत्र प्रणव के साथ तथा मायाबीज, रमाबीज कामबीज एवं वाक्बीजों के साथ समन्वित कर देने पर पटक्षर के रूप में परिणत हो जाता है जिसकी साधना से बन्ध, मोक्ष, रोगनाश सन्तान की उपलब्धि क्षीणराज्य तथा धनधान्य आदि की उपलब्धियां एवं वाक् शक्तियां प्राप्त होती हैं। तांत्रिक साधना का रहस्य इसी उपर्युक्त एकाक्षर मंत्र में सन्निहित है।

बिन्दुरूपा एक परम शक्ति है जो एकाक्षर मंत्रों में प्रतिष्ठित होने पर विभिन्न प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न हो जाती है। राम का "म" जब अनुनासिक रूप ग्रहण कर लेता है और मकार के स्थान पर शून्य रूपा बिन्दु ऊर्ध्वगत भाव में परिणत हो जाता है तब "रं" यही एकाक्षर मंत्र अतुल शक्तियों का प्रदायक हो जाता है। इस प्रकार "राम" शब्द को एकाक्षर रूप में द्वयक्षर रूप में एवं वाक्प्रदायिनी शक्तियों के प्रदायक मंत्रों के साथ जब सम्मिलित कर लेते हैं तो साधना का क्रम अत्यन्त विषद हो जाता है।

इसी प्रकार 'राम' यह द्वयक्षर मंत्र भी साधना का एक परम अंग हो जाता है। इसीलिए 'रामेति द्वयक्षरं नामः मामभंगोपिनाकिनः।' यह उक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार 'रामायनमः यह पंचाक्षर मंत्र भी समस्त मुक्ति एवं मुक्तियों का प्रदाता है। राम इस मंत्र के साथ चन्द्र और भद्र इन दोनों शब्दों को सम्मिलित करके चतुर्थत्यन्त प्रयोग करते हुए नमस्कार पद को सम्मिलित कर दिया जाता है तब वह सप्ताक्षर मंत्र हो जाता है जिसे सप्तर्षियों ने अपनी साधना का अंग बनाया था। षडक्षर मंत्र के साथ प्रणव आदि तत्त्व एवं वाक्, काम, लक्ष्मी आदि बीज मंत्रों को वेष्टित कर देने पर यह मंत्र द्वादशाक्षर मंत्र हो जाता है जो समस्त वांछित वस्तुओं का प्रदायक है। प्रणव मंत्र

चतुर्थत्यन्त राम अनन्त में क्रोध तथा अग्नि प्रिया रूप स्वाहा शब्द संयुक्ताक्षर कर देने पर यह अष्टक्षर मंत्र हो जाता है जो समस्त दोषों को नष्ट करने वाला तथा संग्राम में विजय प्राप्त करने वाला हो जाता है।

सर्वांग में भस्मोद्धूलित करने वाले भगवान् शिव ने 'रामायनमः' इस पंचाक्षर मंत्र को प्रणव के साथ वेष्टित करके जप किया था। जप करते समय अनर्तहृदय में शब्द का जब हृत्तंत्री के साथ पुनः पुनः आघात एवं प्रतिघात होता है तथा एक प्रकार का नाद प्रतिध्वनित होता है जिसकी झंकार से सारा ब्रह्माण्ड रूप में अवस्थित ब्रह्म ध्वनि मे मस्तिष्क परिव्याप्त हो जाता है और अन्त में ध्वनि समस्त विश्व में व्यापक रूप से प्रतिध्वनित होती हुई मस्तिष्क में सूक्ष्म रूप से अवस्थित हो जाती है। साधना का यह रहस्य योगाधिरूढ़ तान्त्रिकों को ही उपर्युक्त प्रकार से उपासना करने पर परिलक्षित होता है।

राम की उपासना तंत्र शास्त्रों में कई प्रकार से उल्लिखित है। स्वयं भाई भरत ने इनकी उपासना की थी। उन्होंने राम के अष्टदशाक्षर मंत्र को अपनी उपासना का अंग बनाया था। प्रणव पद को समाविष्ट करते हुए चतुर्थत्यन्त भगवत् शब्द एवं चतुर्थत्यन्त राम शब्द महापुरुष चतुर्थत्यन्त पदों को सम्बन्धित करते हुए ठकारद्वय अन्त में संयुक्त कर देने पर यह मंत्र अष्टदशाक्षर वाला हो जाता है जिसकी उपासना भरत ने की थी जिसमें बल पर उन्होंने धवलगिरि लेते हुए आकाश मार्ग से गमन करने वाले हनुमान को अपने आसन के तिनके को फेंककर अपने पास आकाश चारी निशाचर समझ कर बुलाया। जब उनसे यह मालूम हुआ कि यह भगवान् राम का उपासक है, एवं शक्ति वाण से मुच्छित भाई लक्ष्मण को पुनः चेतना प्रदान करने के लिए स्वयं हनुमान जा रहे हैं तब उन्होंने पुनः उसी कुशासन के तिनके से उन्हें सूर्योदय से पूर्व ही उस स्थान पर भेज दिया जहां लक्ष्मण मूच्छित अवस्था में विद्यमान थे। इसी प्रकार विभीषण ने जिस मंत्र की उपासना की वह मंत्र तेईस अक्षरों का मंत्र है जो मोक्ष का प्रदाता है। लक्ष्मण ने सेंतालीस अक्षरों के मालामंत्र की उपासना की थी जिसके कारण उन्होंने द्वादश वर्षों तक निद्रा का परित्याग कर दिया था, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऐसी शक्ति प्राप्त की जो शक्ति अस्त्रों से मुच्छित होने पर भी पुनर्जीवित कर देती थी। यह राम की ही महिमा का प्रताप था।

मेघनाद जैसा शक्तिशाली योद्धा जिसने देवराज इन्द्र को भी पराजित कर रखा था वैसे वीर पुरुष को लक्ष्मण ने उपासना के बल पर चूर्ण विचूर्ण कर दिया। यह इसी उपासना का परिणाम था। शत्रुघ्न ने विजय करने वाली राम गायत्री की उपासना की थी जो भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाली है। 'दाशरथाय विदमहे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्' इस प्रकार राम गायत्री की उपासना महाराज शत्रुघ्न ने की थी। जगत् जननी सीता ने भी 'श्री रामाय हूं फट स्वाहा' इस नवाक्षर मंत्र की उपासना की थी। इस प्रकार भगवान् राम की उपासना का जो रहस्य तंत्रशास्त्रों में प्रतिष्ठित है उस रहस्य को आदरणीय परमपूज्य गोस्वामी जी ने अपनी रामायण में प्रतिष्ठित किया था। रामायण में स्वामी जी की अभिलषित पंक्तियां परम गोपनीय रहस्यों से परिपूरित हैं। 'रां' रामाय नमः इस रहस्य का तात्पर्य स्वामी जी ने—

‘प्रविसि नगर कीजे सब काजा।
हृदय राखि कौशल पुर राजा॥’

में समाविष्ट किया है। ‘हृदय राशि’ कौशलपुर राजा राम को ‘रां रामाय नमः’ के रूप में प्रतिष्ठित करता हुआ व्यक्ति जिन-जिन कार्यों, की ओर अभिमुख होता है उन-उन कार्यों की पूर्णता उसे क्षणमात्र में हो जाती है। इसी प्रकार ‘नमः’ इस पद को ‘राम’ पद के साथ सम्मिलित कर देते हैं अर्थात् रामायनमः इस पद को जब अपनी साधना का अंग बनाते हैं और देश देशान्तरों में भ्रमण करते हैं तो सभी प्रकार की कुशलता दायिनी अवस्थाएं उन्हें उपलब्ध हो जाती है। इस रहस्य को स्वामी जी ने ‘रथ चढ़ि सिया सहित दोउ भाई, चले वनहि अवधिहिं सिर नाई।’ इत्यादि उपर्युक्त पंक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार जो मनुष्य भूत पिशाच आदि के प्रकोप से मुक्त होना चाहता है वह ‘वन्दहु पवन कुमार, खल बन पावक ग्यान धन’ इत्यादि सोरठा के जाप से अपने को मुक्ति दिला सकता है। इन सभी चौपाइयों में तांत्रिक साधना की विधियों को अत्यन्त गुप्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है। तान्त्रिक सिद्धियों की गुप्त साधना को सरल भाषा में स्वामी जी ने हमारे सम्मुख प्रतिष्ठित करके अपनी दैनिक प्रक्रियाओं को प्रतिष्ठित किया जो चिरन्तन तथा सनातन भाव से समाज का कल्याण करती चली आ रही है। इस पद्धति पर शोध कार्यों का अत्यन्त अभाव सा प्रतीत हो रहा है जिसकी पूर्ति के लिए भविष्य में यदि कोई साधक साधना को अंग बनाकर इसको व्यावहारिक रूप प्रदान करे तो साहित्यिक एवं मानव जगत् के लिए परम उपकारी तत्व हो सकता है।

सौ/डी-30 पुराना कवि नगर, गाजियाबाद-201001

राजभाषा : स्थिति एवम् अपेक्षाएं*

—चन्द्रधर त्रिपाठी

भारत को स्वाधीन हुए 53 वर्ष हो गए हैं और हम गणतंत्र की स्वर्ण जयन्ती भी मना चुके हैं। गणतंत्र की स्थापना के पचास वर्ष बाद भी अपनी राजभाषा की स्थिति पर चर्चा करना कुछ असंगत सा लगता है किन्तु हमारे देश में आजादी के बाद नैतिक मूल्यों का जो हास हुआ है, समाज के सभी क्षेत्रों में जो गिरावट आई है, राष्ट्रीयता की भावना का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है, इन सभी प्रश्नों पर विचार करने का समुचित समय यही है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अस्सी वर्ष पूर्व आह्वान किया था :

“हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर वे समस्याएं सभी।”

आज हमें केवल यह विचार ही नहीं करना है कि हम क्या से क्या हो गए और क्या होने जा रहे हैं बल्कि हमें यह भी देखना होगा कि शेष संसार कहां से कहां पहुंच रहा है और उसमें हमारी स्थिति क्या है ?

राष्ट्रीयता का समुचित विकास न होना हमारे लिए बड़ी चिन्ता का विषय है। इसका कारण रहा है राष्ट्रीयता के कारक तत्वों के प्रति हमारी उदासीनता और एक हद तक उनकी उपेक्षा भी।

राष्ट्रीयता के कारक तत्वों में भाषा का स्थान बहुत ऊंचा है। संसार के अनेक राष्ट्रों की राष्ट्रीयता का तो आधार ही भाषा है। अपनी भाषाओं को योग्य सम्मान न देने के कारण राष्ट्रों का नाश भी हुआ है। सबसे बड़ा उदाहरण हमारे पड़ोसी पाकिस्तान का ही है—पूर्वी पाकिस्तान में बंगला भाषा की महत्ता को स्वीकार न करने के कारण ही पाकिस्तान का विभाजन और बंगलादेश का जन्म हुआ।

भारत में भाषा का प्रश्न स्वाधीनता संग्राम के समय बहुत महत्वपूर्ण था। उस समय हम यह मान कर चल रहे थे कि स्वाधीनता के बाद सरकार और समाज का सारा कामकाज हमारी अपनी भाषाओं में ही होगा और हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होगी। वास्तव में उस समय राजभाषा शब्द का प्रयोग ही नहीं होता था, बल्कि सर्वत्र राष्ट्रभाषा की ही चर्चा होती थी और हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है यह बात सारा देश बहुत पहले मान चुका था, क्योंकि सही सोचने वाले सभी लोग देख रहे थे कि छः सात सौ वर्षों से यह सारे देश की सम्पर्क भाषा बनी हुई थी। इसीलिए गांधीजी ने तो इस भाषा को न सिर्फ अपनाया वरन् सत्याग्रह और खादी के समान हिंदी को स्वाधीनता

*दी सेंटर फार एडमिनिस्ट्रेटिव चेंज, जयपुर द्वारा आयोजित विष्णुदत्त शर्मा स्मृति व्याख्यान (15 मार्च, 2000)

संग्राम के एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। गांधी जी की आजादी की लड़ाई के हर सिपाही को हिंदी का सिपाही बनना भी जरूरी हो गया। यह गांधी जी के मस्तिष्क का फितूर नहीं था। ऐसा नहीं था कि वे एक सुबह सो कर उठे और उन्होंने अकारण ही हिंदी का चरखा चला दिया। यह तो उनकी सोची-समझी रणनीति थी क्योंकि उन्होंने देखा कि यह भाषा सारे देश में—सुदूर दक्षिण में भी—एक बड़े जन समुदाय द्वारा बोली नहीं तो समझी जरूर जाती है और इसमें राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ने की अपार क्षमता है। उन्होंने देखा कि कश्मीर, बंगाल या असम का तीर्थयात्री जब कन्याकुमारी या रामेश्वरम् जाता है तो वहां के पुरोहित से उसकी बातचीत हिंदी में ही होती है, क्योंकि न तो वह तमिल जानता है, न पुरोहित से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह कश्मीरी, बंगला, असमिया या अन्य सभी भाषाएं जानेगा।

वही यात्री जब गुजरात में द्वारका जाता है तो संवाद का माध्यम फिर वही हिंदी बनती है। जैसा कि विदित है कि हिंदी का पहला तो नहीं पर दूसरा समाचार पत्र अहिंदी भाषी नगर कलकत्ता से राजा राममोहन राय ने सन् 1829 में निकाला था। उन्होंने एक साथ अंग्रेजी, फारसी, बंगला और हिंदी में पत्र निकाले थे—अंग्रेजी में इसलिए कि वंह तत्कालीन शासकों की भाषा थी, फारसी उच्च वर्ग की भाषा थी, बंगला में इसलिए कि वे अपनी बात अपने लोगों से कहना चाहते थे और हिंदी में इसलिए कि बंगाल के बाहर भी सभी देशवासी उनका संदेश समझ सकें। हिंदी को भले ही मातृभाषा के रूप में उत्तर भारत के एक क्षेत्र मात्र के लोगों ने अपनाया था, पर सम्पर्क भाषा वह सारे भारत की रही।

वास्तव में, इस दृष्टि से देखें तो भारत में अहिंदी भाषी कोई नहीं। बस अन्तर यह है कि कुछ की मातृभाषा हिंदी है, कुछ की नहीं, पर हिंदी सबकी है और सभी हिंदी के हैं। इसीलिए जब गुजरात के स्वामी दयानंद वेदों पर नया भाष्य रचने को प्रवृत्त हुए तो बंगाल के आचार्य केशव चन्द्र सेन ने उन्हें सलाह दी कि आप गुजराती में न लिख कर हिंदी में लिखें जिससे सारे भारतवासी उससे लाभ उठा सकें। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश जैसे अनुपम ग्रन्थ का सृजन हुआ। बाद में चाहे लोकमान्य तिलक हों, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हों, राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्यम भारती हों, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस हों, उनके ऐसे मनीषियों ने जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी, हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मान दिया और अपनाया। आप जानते हैं कि दक्षिण भारत में हिंदी के सबसे प्रबल समर्थक थे चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, और सन् 1937 में जब वे मद्रास प्रान्त के प्रथम प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने स्कूलों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी थी। स्वाधीनता के बाद राजनीतिक कारणों से वे कांग्रेस और पण्डित नेहरू के ही नहीं हिंदी के भी विरोधी हो गए थे—वह और बात है।

आज आजादी के 53 साल बाद भी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान नहीं मिल सका है, यह तो दुर्भाग्य की बात है ही। उससे भी अधिक चिन्ताजनक बात यह है कि उनके विकल्प के रूप में कुछ लोग अंग्रेजी की हिमायत करते हैं। इस संदर्भ में स्मरणीय है कि जब संविधान बन रहा था, उस समय तक तो कोई अंग्रेजी के विकल्प की कल्पना भी नहीं

कर सकता था। तत्कालीन राष्ट्रीयता की भावना अपने देश में विदेशी भाषा के चलन पर विचार करने तक की अनुमति नहीं देती थी। उस समय विवाद था केवल हिंदी और हिंदुस्तानी को लेकर। गांधीजी ने ही हिंदी के स्थान पर हिंदुस्तानी की बात शुरू की थी। पर दरअसल हिंदुस्तानी हिंदी का ही वह स्वरूप थी जो बहुत संस्कृतगर्भित पण्डिताऊ न होकर बोल-चाल की आम फहम भाषा हो। अर्थात् गांधी जी जनता की भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देना चाहते थे जो जनता ने हिंदी को दे ही रखा था।

प्रसंगवश यह भी कह दूँ कि बहुत लोगों ने यह गलतफहमी पाल रखी है कि हिंदुस्तानी शब्द गांधी जी के दिमाग की उपज थी। वास्तविकता तो यह है कि सबसे पहले इस नाम की भाषा की पढ़ाई, जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं, कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज में आई.सी.एस. अफसरों के लिए 19वीं शती में आरम्भ की गई थी। “फूट डालो और राज करो” की नीति का एक अंग था यह कदम फिर फ्रेंच पादरी गार्सा दतासी ने हिंदी और हिंदुस्तानी के भेद पर बल देना आरम्भ किया। गांधी जी तो न जाने कैसे इस विवाद में आ फंसे और युक्ति तथा तथ्यों से दूर चले गए।

पर इस विवाद का दुष्परिणाम यह हुआ कि संविधान ने भारत की कोई राष्ट्रभाषा ही घोषित नहीं की। आखिर एक पक्ष के नेता गांधी बाबा स्वयम् थे। पर तर्क तथा वस्तुस्थिति दूसरे पक्ष की ओर थे। संविधान ने इतना कहकर मामला खत्म कर दिया कि भारतीय संघ (यूनियन) के कामकाज की भाषा (Official Language) अथवा राजभाषा हिंदी होगी और विभिन्न राज्यों की राजभाषाएं वहां की प्रमुख भाषाएं होंगी।

संविधान में यह प्रावधान जरूर रखा गया कि कामकाज में सहूलियत के लिए पन्द्रह वर्षों तक अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में चलते रहने दिया जाएगा। इस प्रावधान में ही उस कमजोरी के बीज थे जिनके चलते पन्द्रह नहीं पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी संघ और अनेक राज्यों के शासन की भाषा अंग्रेजी बनी हुई है—सहभाषा के नहीं, मुख्य भाषा के रूप में। और नागालैण्ड तथा मेघालय जैसे राज्यों में तो एकमात्र राजभाषा अंग्रेजी ही है। इस संदर्भ में मुझे तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा की याद आती है। कहते हैं कि पहले विश्व युद्ध के बाद तुर्की में जब खलीफा के शासन का अन्त हुआ और मुस्तफा कमाल ने अभिनव प्रजातंत्र की स्थापना की तो उन्होंने सोचा कि हमारी अपनी प्राचीन भाषा के रहते हुए अरबी और अंग्रेजी का वर्चस्व देश में बना रहे, यह राष्ट्रीय सम्मान के खिलाफ होगा। अपने वरिष्ठ अधिकारियों को बुलाकर उन्होंने पूछा कि सारा काम-काज अरबी और अंग्रेजी के स्थान पर तुर्की में होने लगे, इसमें कितना समय लगेगा? उत्तर मिला, “(दस वर्ष)!” मुस्तफा कमाल ने सोचा “इतने लम्बे समय में तो देश की पहचान ही बदल जाएगी।” फिर आदेश दिया, “तो आप लोग समझिए कि दस वर्ष का समय आज समाप्त हो गया और कल सवेरे दस बजे उसी के अनुसार काम शुरू कर दीजिए।”

हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे यहां कोई मुस्तफा कमाल नहीं हुआ और अब 53 वर्ष बाद हम अमरीकी संस्कृति और अंग्रेजी भाषा के आक्रामक तेवरों को झेल रहे हैं।

बहुभाषी देश होने के कारण भारत की भाषाई समस्या जटिल है और तुर्की जैसा समाधान यहां संभव नहीं था। पर बात तुर्की के अनुकरण की नहीं, मानसिकता की है। हमें मुस्तफा कमाल जैसा शासन नहीं चाहिए पर राष्ट्रीयता के हर कारक तत्व के प्रति, विशेषकर भाषा के क्षेत्र में उत्कृष्ट राष्ट्रीय मानसिकता की आवश्यकता है।

आज हिंदी और अन्य क्षेत्रीय राजभाषाओं की क्या स्थिति है ? अब इस पर एक नजर डाल लें। सबसे पहले केन्द्रीय सरकार को लें। संविधान में तो अंग्रेजी को पन्द्रह वर्ष का समय दिया गया था। पर बाद में पं. नेहरू ने यह आश्वासन दिया कि जब तक एक भी राज्य अंग्रेजी को हटाकर सम्पूर्णतः हिंदी में काम करने के विरुद्ध निर्णय लेगा तब तक अंग्रेजी चलती रहेगी। स्पष्टतः यह संविधान सम्मत बात नहीं थी। इसे असंवैधानिक (unconstitutional) न भी कहें तो भी यह आश्वासन संविधान से बाह्य (extra-constitutional) जरूर था। सन् 1965 में यह समय-सीमा समाप्त होने पर तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आन्दोलन हुए, कट्टरपंथियों ने आत्मदाह तक किए और फिर आया 1968 का राजभाषा अधिनियम (Official Languages Act) जो प्रत्यक्षतः हिंदी को लागू करने के लिए था, किन्तु व्यावहारिक रूप में अंग्रेजी को अनन्तकाल तक चालू रखने का पासपोर्ट सिद्ध हुआ।

उसके बाद से भारत सरकार ने अनेक ऐसे कदम उठाए जो घोषित रूप से हिंदी के प्रचार-प्रसार और सरकारी कामकाज में हिंदी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के लिए थे, पर उनकी प्रभावात्मकता बहुधा सीमित रही।

इनमें सर्वाधिक महत्व का काम था 1976 में गृह मंत्रालय में राजभाषा विभाग की स्थापना। किसी विषय से सम्बन्धित पूरा विभाग या मंत्रालय सरकार उस विषय की गुरुता को रेखांकित करने के लिए ही करती है। पिछले चौबीस वर्षों में इस विभाग ने अनेक उपयोगी काम किए हैं जिनमें सर्वाधिक महत्व के कामों में मैं कम्प्यूटर पर हिंदी लाने सम्बन्धी कामों को मानता हूँ। राजभाषा विभाग का कार्यक्षेत्र सरकारी और अर्द्धसरकारी संगठनों में राजभाषा सम्बन्धी नीतियों और आदेशों का पालन सुनिश्चित करना ही रहा। समाज तथा शिक्षा संस्थाओं में हिंदी के प्रचार-प्रसार और प्रोत्साहन का काम शिक्षा मंत्रालय के अधीन रहा। इस प्रकार भारत सरकार ने हिंदी और राजभाषा को दो अलग विषयों के रूप में माना। परिणामतः राजभाषा विभाग को हिंदी की स्वैच्छिक संस्थाओं, हिंदी विद्वानों और कार्यकर्ताओं आदि से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं बना। आम जनता तो सही समझती रही कि हिंदी के सर्वांगीण विकास के लिए राजभाषा विभाग उत्तरदायी है और कमियां दिखने पर इस विभाग की आलोचनाएं भी होती रहीं, पर वास्तविकता यही रही कि आरम्भ से ही इस विभाग का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा। हिंदी के विषय में ऐसी विभाजित दृष्टि किसी की सोची-समझी नीति का फल था या उसके परिणामों का अनुमान कर सकने की अक्षमता का, मैं यह नहीं जानता। किन्तु इतना ध्रुव सत्य है कि इस विभाजित दृष्टि के कारण हिंदी की क्षमता का विकास और प्रचार-प्रसार दोनों ही अपेक्षित परिणाम में न हो सके।

1963 के राजभाषा अधिनियम के अन्तर्गत सन् 1976 में एक संसदीय राजभाषा समिति का गठन हुआ, जिसमें लोक सभा के बीस और राज्य सभा के दस सदस्य रखे गए। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि सभी सरकारी, अर्धसरकारी संगठनों में राजभाषा कार्यान्वयन की समीक्षा कर उसे और प्रभावी बनाने के लिए उपाय सुझाए। संसदीय समितियों का कार्यकाल, जैसा कि आप जानते हैं, सीमित होता है और अपनी रिपोर्ट देकर वे भंग हो जाती हैं। किन्तु संसार के संसदीय इतिहास में यह सम्भवतः अकेली समिति है जो 24 साल बाद भी चलती चली जा रही है। हर बार लोक सभा का विघटन होने पर इसका पुनर्गठन होता है। अब तक यह समिति अपनी रिपोर्ट के छः खण्ड प्रस्तुत कर चुकी है, जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। प्रथम पांच खण्डों पर राष्ट्रपति के आदेश भी जारी हो चुके हैं।

कुछ संतोष की बात है कि अधिकांश संगठनों में इन आदेशों का पालन संतोषजनक है, किन्तु जनता की अपेक्षा तो सौ फीसदी काम से है।

सम्पूर्ण कार्यान्वयन क्यों नहीं हो रहा, इसका उत्तर एक शब्द में दिया जा सकता है—कार्यपालकों की मानसिकता। कोई कहता है अफसरीतंत्र (bureaucracy) इसके लिए जिम्मेदार है तो कोई राजनीतिक इच्छाशक्ति (political will) के अभाव को दोष देता है। कुछ लोग तो और आगे बढ़कर हिंदी की सामर्थ्य पर ही उंगली उठाने लगते हैं। इन संदर्भों में मुझे अनुमति दें कि कुछ व्यक्तिगत अनुभव आपके सामने प्रस्तुत करूं। मुझे इस बात का पूरा एहसास है कि किसी बात को तर्क से सिद्ध करना ही सर्वोत्तम प्रमाण होता है किन्तु प्रमाण के लिए उदाहरण देने का निषेध तो नहीं। फिर हम किसी सैद्धान्तिक बहस में तो उलझे नहीं हैं। हम तो ऐसे विषय पर चर्चा कर रहे हैं जिसमें प्रत्यक्ष अनुभव को ही प्रमाण माना जा सकता है। कबीर के अमर शब्द याद करें :

*तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता आंखिन की देखी ॥*

तो मैं भी आपकी अनुमति चाहता हूँ कुछ "आंखिन की देखी" सुना कर अपनी बात कहने की।

पहले एक हिंदी भाषी अफसर की बात बताऊँ, जब हम लोग अपने सेवाकाल के पहले साल में प्रशिक्षण ले रहे थे तब की, अर्थात् 38 साल पहले की बात है। भाषा के प्रश्न पर अक्सर वाद-विवाद होता रहता था। उत्तर प्रदेश के ये हिंदी-भाषी मित्र यह मानते थे कि हिंदी के जरिए सारे काम हो ही नहीं सकते। उदाहरण मांगने पर बोले कि "मान लो किसी किसान को ट्रैक्टर की कार्य प्रणाली समझानी है तो यह हिंदी में कैसे बता सकते हैं?" आज उन्हें यह समझाना तो व्यर्थ ही था कि "मेरे भाई, जब किसान अंग्रेजी नहीं जानता तो वह समझेगा कैसे?" वे तो अफसर थे न, उनका काम था समझाना, कोई न समझे तो वे क्या करें? मन में ही "मूर्ख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम" कहकर चुप हो जाना ही उचित समझा। प्रसंगतः बता दूँ कि ये सज्जन

अपने सेवाकाल में अच्छे से अच्छे पदों को सुशोभित करते रहे और भारत सरकार के सचिव पद से सेवानिवृत्त होने के बाद भी सरकार के कृपापात्र बने हुए हैं। कहना न होगा कि यह एक उदाहरण मात्र है। इस प्रकार की साहबी मनोवृत्ति वाले ही सरकार में अधिक उन्नति कर पाते हैं।

लगे हाथ एक मंत्री जी की बात भी सुन लें। किसी मंत्रालय में मेरी नियुक्ति हुई तो संयोग से हिंदी दिवस अर्थात् 14 सितम्बर के दो दिन पहले ही मैं वहां कार्यभार लेने पहुंचा। जैसा कि आपने देखा होगा, जगह-जगह पोस्टर लगे हुए थे। मंत्री जी की इस अपील कि आप हिंदी में काम करें। यह जानते हुए भी कि यह सब मात्र औपचारिकता और उत्सव है अच्छा ही लगा। इसी दिन दोपहर बाद में अपनी पहली फाइल लेकर मंत्री जी के पास गया। मेरा नोट देखकर वे बोले, “अरे, आप तो हिंदी में लिख लाए।” मैंने निवेदन किया “जी, कोशिश तो यही करता हूं कि अधिक से अधिक काम हिंदी में करूं” और आप भी तो यह चाहते हैं—आपकी अपील के बहुत से पोस्टर अभी देखे हैं और मेरा निवेदन है कि “आप भी, जो कुछ आदेश देना हो, चाहे केवल हस्ताक्षर करना हो, वह हिंदी में ही लिखें, क्योंकि आप एक लाइन हिंदी में लिखेंगे तो मैं दस लाइन लिखूंगा और मेरे नीचे वाले सौ लाइनें लिखेंगे।” उन्होंने इस पर जो कहा उसे सुनकर आप रोएंगे या हंसेंगे, मैं नहीं जानता क्योंकि उन्होंने कहा, “लेकिन मैं तो अंग्रेजी का एम.ए. हूं।” मैंने कहा, तो उससे तो आप के हिंदी में लिखने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए और यह भी बता दूं कि मैं तो एम.ए. हूं ही नहीं, न अंग्रेजी का न हिंदी का। मैं तो एम.एस.सी. हूं। आपके तर्क के अनुसार चलूं तो मुझे तो लिखना ही नहीं चाहिए। आखिर मैं गणित के फार्मूलों में तो नोट लिख नहीं सकता। अगर आपकी यही इच्छा हो तो बताएं मैं कल से आपके पास कोई फाइल लाऊंगा ही नहीं। इसके बाद की बातें अप्रासंगिक हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में बस एक उदाहरण और देकर मैं यह किस्सागोई बन्द करूंगा। कुछ वर्षों पूर्व बेंगलौर में, मैं बैंक अधिकारियों की एक बैठक में बातचीत कर रहा था। पूछा कि आप लोग बताएं कि हिंदी में काम करने में कठिनाइयां क्या हैं? तो एक सज्जन ने खड़े होकर कहा, “हिंदी में काम करने में कोई कठिनाई नहीं है।” फिर अपनी दाहिनी तर्जनी सिर के पास गोल-गोल घुमाकर कहा, “कठिनाई यहां है।” हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को उनके उचित स्थान आज भी क्यों नहीं दे सके हैं? इसका सम्पूर्ण उत्तर उस कन्नड़ भाषी मित्र ने दो वाक्यों और एक मुद्रा से दे दिया था, ऐसा मैं मानता हूं।

दो मिनट भाषा की सामर्थ्य के विषय में भी कह दूं। इसकी बात अधिकतर शिक्षा के माध्यम के संदर्भ में की जाती है। यहां स्थिति कुछ मुर्गी और अण्डे वाली है। पाठ्य पुस्तकें हिंदी में नहीं होंगी तो पढ़ाया हिंदी में कैसे जाएगा?, और लेखकों-विद्वानों ने जब हिंदी में अपने विषय का अध्ययन नहीं किया है तो वे हिंदी में लिखेंगे कैसे? याने पहले मुर्गी या अण्डा? जाहिर है कि ऐसी दशा में संक्रान्ति काल में अनुवाद की अनिवार्यता बनी रहेगी। पहले अंग्रेजी आदि में लिखी स्तरीय पुस्तकों के अनुवाद पढ़ाए जाएंगे फिर धीरे-धीरे पढ़ने-पढ़ाने को अभ्यास हो जाने पर

लोग मौलिक रूप से हिंदी में लिखने लगेगे। मेरा विश्वास है कि यह बात कहने में जितनी आसान लगती है कार्यरूप में भी उतनी ही सरल है। फिर क्रमशः शोध और शोध ग्रन्थों की भाषा भी हिंदी हो सकेगी। जापान ने इसी रास्ते पर चलकर जापानी को उच्च शिक्षा और शोध का माध्यम बनाया और चीन भी उसी रास्ते पर चल रहा है—न केवल मानविक (humanities) में वरन् विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र में भी। यहां तक की अरबी भाषा में भी ऐसे प्रयत्न खूब हो रहे हैं।

ये बातें मैंने हिंदी के संदर्भ में कही हैं। अन्य भाषाओं के संदर्भ में एक-विशेष कठिनाई भी है— जिसका उल्लेख आवश्यक है। एक गुजराती प्रध्यापक ने चर्चा के दौरान मुझसे कहा था कि हिंदी में स्नातकोत्तर पुस्तकों के लिए बड़ी मांग होगी क्योंकि किसी भी समय, किसी भी विषय, में हिंदी माध्यम वाले पचासों-सैकड़ों होंगे—उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, बिहार के अनेक विश्वविद्यालयों में। पर गुजराती माध्यम वाले तो दस बीस ही होंगे—बस गुजरात के तीन-चार विश्वविद्यालयों में। अब इतनी कम मांग की पूर्ति के लिए कौन तो लिखेगा और कौन प्रकाशित करेगा? यह कठिनाई वास्तविक है और मैं समझता हूँ कि इसका समाधान बाजार की मांग के आधार पर नहीं हो सकता, इसके लिए सरकारों—राज्यों और केन्द्र की—तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विशेष कार्यक्रम बनाकर अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा, जिससे लेखकों-प्रकाशकों दोनों की भरपाई हो सके।

भाषा की सामर्थ्य की चर्चा के दौरान ही मैं यह भी कहना चाहूंगा कि आज केवल पारिभाषिक शब्दों और पदों आदि की रचना करके काम नहीं चलने वाला। आज के इलेक्ट्रॉनिकी युग में कम्प्यूटर और संचार माध्यमों में प्रयोग के लिए भी भाषा का सक्षम होना अनिवार्य हो गया है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) में बहुत उन्नति हुई है और पुणे स्थित C-DAC (Centre for Development of Advanced Computing) जैसी संस्थाओं के प्रयत्न से अब हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का कम्प्यूटर पर प्रयोग सुगम हो गया है। हिंदी सीखने के लिए तो कई सॉफ्टवेयर बने ही हैं, जल्दी ही कम्प्यूटर द्वारा एक भारतीय भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद की सुविधा भी उपलब्ध हो जाएगी। मैं आपको बताना चाहूंगा कि भारतीय बाजार और उसमें हिंदी के महत्व को समझ कर आई.बी.एम. और विश्व स्तर के अन्य कम्प्यूटर संस्थान हिंदी में तरह-तरह के सॉफ्टवेयर बना रहे हैं। शीघ्र ही कम्प्यूटरों को आदेश (command) भी हिंदी में दिए जा सकेंगे। उनका विकास हो रहा है।

यहां तक पहुंच कर मैं थोड़ा समय हिंदीतर राज्यों की राजभाषाओं के विषय में लगाना चाहूंगा। केन्द्रीय सरकार में हिंदी की स्थिति सन्तोषजनक नहीं लगती, मैं अब तक इस बात पर बल देता रहा, किन्तु उन राज्यों में जिनकी राजभाषा हिंदी है स्थिति निश्चय ही बेहतर है—उत्तर प्रदेश में, राजस्थान में, मध्य प्रदेश में, बिहार में, हरियाणा में अधिकांश काम हिंदी में होता है। हिंदीतर राज्यों में वहां की राजभाषाएं कहीं-कहीं तो अपनी जगह पर ठीक हैं पर सर्वत्र नहीं। गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, असम, बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल में सचिवालय

स्तर पर अधिकांश काम वहां की राजभाषाओं में हो रहा है। इन राज्यों ने अलग भाषा विभाग या भाषा निदेशालय भी स्थापित किए हैं। आश्चर्य की बात है कि तमिलनाडु में अभी हाल तक स्थिति बड़ी अच्छी नहीं थी जबकि भाषा के मामले में वह सबसे मुखर राज्य रहा है। गत चार पांच वर्षों से वहां भी तमिल को सरकारी कामकाज में अधिकाधिक स्थान मिल गया है।

अन्य राजभाषाओं की स्थिति की इस संक्षिप्त-सी समीक्षा के बाद गैर-हिंदी राज्यों में हिंदी की स्थिति पर भी एक नजर डाल लेना उचित होगा।

हिंदी का विरोध अब कहीं नहीं है—तमिलनाडु में भी नहीं। यह मैं व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर विश्वासपूर्वक कह सकता हूं। तमिलनाडु में जो विरोध दीखता भी है वह शुद्ध राजनीतिक कारणों से और वास्तव में उत्तर भारत के वर्चस्व के प्रति है। यह तो ठीक ही माना जाना चाहिए कि दादागिरी किसी की भी नहीं सही जा सकती। कोई-कोई हिंदी को उत्तर भारत का प्रतीक मान लेते हैं या ऐसा नारा दे देते हैं, फिर विरोध तो होता है उत्तर की दादागिरी का—वह भी काल्पनिक—और मारी जाती है बेचारी हिंदी! पहले भी जहां विरोध था वह भी रोजी-रोटी के सवाल के कारण था। दक्षिण में लोगों को लगा कि भारत सरकार में हिंदी का पूरा प्रचलन हो गया तो उन्हें नौकरियां पाने में कठिनाई होने लगेगी। फिर उन्होंने देखा कि वास्तविकता इससे उलटी है। स्वयम् उनके राज्यों में हिंदी सम्बन्धी नौकरियां पैदा हुईं और हिंदी में योग्यता प्राप्त करने से उनके लिए घर बैठे रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं। उन्होंने यह भी पाया कि हिंदी में योग्यता प्राप्त कर वे उत्तर भारत में भी रोजगार पा सकते हैं। यही कारण है कि हाल के वर्षों में दक्षिण भारत में हिंदी पढ़ने वालों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। चेन्नई की दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति, केरल हिंदी सेवा समिति, कर्नाटक की तीन हिंदी प्रचार समितियों, आन्ध्र प्रदेश हिंदी प्रचार सभा तथा वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार सभा की परीक्षाओं में हर साल लाखों विद्यार्थी उत्तीर्ण हो रहे हैं। इनमें सबसे अधिक तमिलनाडु से, शायद इसलिए कि वहां सरकारी नियमाधीन स्कूलों में हिंदी को स्थान नहीं। किंतु इसके साथ ही एक प्रश्न उठता है जिसका सम्बन्ध राष्ट्रीय एकता से है।

दक्षिण का व्यक्ति हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देते हुए और उसे रोजगार में सहायक भाषा मानकर उसमें योग्यता प्राप्त करता है, पर राजनीतिक स्तर पर एक सर्वथा उचित सवाल उठता है कि “मैं तो हिंदी सीख रहा हूं, पर उत्तर वाले मेरी भाषा क्यों नहीं सीखते?” इसी राजनीतिक स्थिति से निपटने के लिए पचास के दशक में त्रिभाषा सूत्र (three-language-formula) का प्रवर्तन किया गया था। तमिलनाडु के अतिरिक्त सभी राज्यों ने इसे स्वीकार किया। इसके अनुसार हाई स्कूल स्तर तक सभी छात्रों को मातृभाषा, हिंदी और अंग्रेजी की पढ़ाई करने की व्यवस्था थी। हिंदी राज्यों के लिए कोई दूसरी भारतीय भाषा पढ़ने की अनिवार्यता रखी गई। गैर-हिंदी राज्यों में इसे लागू किया गया किन्तु परिताप का विषय है कि हिंदी राज्यों में इसे ईमानदारी से अजमाया नहीं गया। कहीं-कहीं अभी भी हिंदी के प्रति जो उदासीनता या कभी-कभी विरोध भी दिखाई देता है वह एक हद तक हिंदी प्रदेशों की इस धांधली के कारण ही है।

यह व्यवस्था लागू न करने के लिए कारण अधिकतर यह बताया गया कि हिंदी माध्यम से इन भाषाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक नहीं मिलते। अरे, नहीं मिलते तो योजनाबद्ध रूप से उन्हें पैदा कीजिए, प्रशिक्षित कीजिए। पर सच तो यह है कि गंभीरतापूर्वक इस सूत्र को लागू करने के प्रयत्न ही नहीं हुए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आज आप हिंदी माध्यम से मलयालम पढ़ाने के लिए अध्यापकों के लिए विज्ञापन दीजिए तो एक महीने के अन्दर आपको पचासों आवेदन-पत्र मिल जाएंगे—प्राथमिक स्तर से लेकर स्नातक स्तर तक के लिए। ये वे लोग होंगे जो आज मलयालम माध्यम से हिंदी पढ़ा रहे हैं। मैं केरल का उदाहरण इसलिए विशेष रूप से दे रहा हूँ कि वहाँ हिंदी की स्थिति बहुत मजबूत है।

केन्द्र सरकार के कामकाज में ही नहीं, कहीं-कहीं तो राज्य सरकार ने भी हिंदी को अपनाया है। मैंने केरल में बसों पर मलयालम और अंग्रेजी के साथ कहीं-कहीं गन्तव्य स्थानों के नाम हिंदी में लिख देते हैं—उन रास्तों पर जहाँ उत्तर के लोग अधिक आते-जाते हैं, जैसे कन्याकुमारी जाने वाली बसें। वहाँ संग्रहालयों में कहीं-कहीं संकेत चिह्न हिंदी में भी देखने को मिले। बहरहाल, त्रिभाषा सूत्र को ईमानदारी से लागू करना हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है। सरकार ही नहीं, स्वैच्छिक संगठन भी इस काम के लिए आगे आए तो यह महान कार्य जल्दी पूरा हो सकेगा। मेरी मान्यता है कि उत्तरी राज्यों में यदि त्रिभाषा सूत्र लागू हो जाए तो तमिलनाडु भी अपनी अकेली राह छोड़ कर शेष भारत के साथ आकर इसे अपनाने में विलम्ब नहीं करेगा। अनौपचारिक रूप से तमिलनाडु में यह चल ही रहा है क्योंकि जैसा मैंने अभी कहा, स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई न होने के बावजूद निजी रूप से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की परीक्षाओं में बीसों हजार तमिल लड़के-लड़कियाँ हर साल भाग ले रहे हैं।

मैं चूँकि हिंदी राज्य राजस्थान में बोल रहा हूँ और यह व्याख्यान मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार के संदर्भ में है, इसलिए मैं कुछ बातें कहना चाहूँगा जो दिल्ली के लिए, मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार करणीय है।

मैं राजभाषा विभाग की सीमाओं तथा संसदीय राजभाषा समिति का जिक्र कर चुका हूँ। मैं आपको यह भी बताना चाहूँगा कि हिंदी के क्षेत्र में सर्वोच्च परामर्शदात्री संस्था है केंद्रीय हिंदी समिति। चूँकि इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं, इसलिए इसके निर्णयों को सरकार पूर्ण सम्मान देती है, वस्तुतः ये निर्णय बाध्यतामूलक होते हैं। सरकारी निर्णयों के अनुसार इसकी बैठक वर्ष में कम से कम एक बार और सम्भव हो तो दो बार होनी चाहिए। आपको दुःख और आश्चर्य होगा कि इसकी अन्तिम बैठक जुलाई, 1994 में हुई थी—चार वर्षों के अन्तराल के बाद। इस बैठक में भी प्रधानमंत्री नरसिंह राव जी ने घोषणा की थी कि इस समिति की बैठक हर साल अवश्य होगी। किन्तु उसके बाद समिति की बैठक तो दूर उसका पुनर्गठन ही नहीं हुआ। 1995 में समिति का कार्यकाल समाप्त हो गया था। फिर ताबड़तोड़ सरकारें बदलती रहीं और किसी के पास इतना अवकाश या इच्छाशक्ति नहीं थी कि इसका पुनर्गठन हो और काम शुरू हो। यह तो हाल है हिंदी सम्बन्धी सर्वोच्च समिति के बारे में सरकार की जागरूकता का।

राजभाषा विभाग तो पूरा विभाग है, पर जैसा मैंने कहा इसका हिंदी से सम्बन्ध बहुत दूर का है। हिंदी का प्रचार-प्रसार तथा विकास शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत आता है। जाहिर है कि

शिक्षा मन्त्री तथा शिक्षा सचिव के पास इतना समय होना असम्भव है कि हिंदी की ओर समुचित ध्यान दे सकें। हिंदी का सारा काम एक संयुक्त सचिव देखता है अपने और कामों के साथ-साथ। इस प्रकार भारत सरकार में हिंदी के विकास और प्रसार-प्रचार का कर्ता-धर्ता एक-तिहाई संयुक्त सचिव है। यह निश्चय ही स्वीकार्य स्थिति नहीं है। अन्य भारतीय भाषाओं के लिए किसी मंत्रालय की कोई जिम्मेदारी नहीं। वहीं हिंदी वाला संयुक्त सचिव सभी भाषाओं के सभी मामलों की जिम्मेदारी संभालता है। सच पूछिए तो हिंदीतर भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में केन्द्र सरकार अपनी कोई भूमिका स्वीकार ही नहीं करती।

इसी संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 351 का उल्लेख समीचीन होगा। इसके अनुसार भारतीय संघ का यह कर्तव्य है कि वह हिंदी भाषा के विकास के लिए सतत प्रयत्न करे जिससे इस भाषा में भारत की साझा संस्कृति प्रतिफलित हो सके। इस कार्य में मूलतः संस्कृत और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं की शब्द भण्डार तथा तत्वों को हिंदी में समाहित किया जाए।

मुझे लगता है कि इस अनुच्छेद के उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में हमारा काम नगण्य रहा है। हिंदी में पारिभाषिक शब्दावलियों आदि का निर्माण अवश्य हुआ है पर इससे अधिक शायद कुछ भी नहीं।

मेरी धारणा है कि इस अनुच्छेद का घोषित उद्देश्य भले ही हिंदी भाषा का विकास है, पर प्रकारान्तर से यह भाषायी सौहार्द और सभी भाषाओं के विकास की बात करता है। इसी के अन्तर्गत संभवतः साहित्य अकादमी का कार्य आता है पर वह तो केवल साहित्य के क्षेत्र में काम करती है—उसमें भी पुरस्कार-योजना तथा एक भाषा से दूसरे में अनुवाद कराकर ही उसके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है।

भाषा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने तथा उनमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए भारत सरकार के पास कोई संस्था नहीं है। उदाहरण स्वरूप, कुछ वर्षों पूर्व मैथिली और मणिपुरी को संविधान की आठवीं सूची में शामिल करने की मांगें गृह मंत्रालय में आईं तो उन पर कैसे विचार हो, यह निश्चित करना ही कठिन हो गया। साहित्य अकादमी की सूची में ये भाषाएं शामिल हैं, पर यह बात आठवीं सूची का अधार नहीं हो सकती। अकादमी तो सभी भारतीय भाषाओं—अत्यन्त अल्पसंख्यक जनजातीय भाषाओं—के भी साहित्य के प्रोत्साहन का काम करती है। मेरा प्रस्ताव है कि भारत सरकार में एक स्वतंत्र भाषा मंत्रालय का गठन हो तो सभी भारतीय भाषाओं के विकास और उनमें सामंजस्य सम्बन्धी नीतियां निर्धारित कर उनका कार्यान्वयन करे। उदाहरण स्वरूप पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न लीजिए। हिंदी समेत सभी भाषाओं ने अपनी-अपनी शब्दावलियां तैयार की हैं और लगभग सभी ने संस्कृत को आधार बनाया है। किन्तु एक ही अर्थ वाले शब्द इन शब्दावलियों में अलग-अलग हैं। सबका आधार संस्कृत है तो कोई कारण नहीं कि सभी भाषाओं में एक ही शब्द न गढ़ा जाए। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। अंग्रेजी शब्द 'plan' के लिए हिंदी में योजना चलता है, पर बंगला में परिकल्पना। एक केन्द्रीय संस्था ऐसी होनी चाहिए, जो इस प्रकार के शब्दों में एकरूपता निर्धारित करे। इसके अतिरिक्त लगभग

समार्थक शब्द 'scheme' है, उसके लिए न हिंदी ने कोई शब्द गढ़ा है, न बंगला ने। परिणामतः 'scheme' के लिए भी हिंदी में योजना और बंगला में परिकल्पना ही चलता है। इस प्रकार की एकरूपता भाषायी सौहार्द को बढ़ावा देगी, भाषाएं सीखने में सहायता देगी और विभिन्न क्षेत्रों के वासियों को एक-दूसरे के निकट लाकर राष्ट्रीय संहति के महत् उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगी। और यह सब होगा किसी भी भाषा के निजी वैशिष्ट्य और सौन्दर्य को प्रभावित किए बिना और धन और श्रम की यथेष्ट बचत करके।

राजभाषा विभाग का वर्तमान काम तथा शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया जाने वाला हिंदी सम्बन्धी काम भी यह भाषा मंत्रालय बखूबी कर सकता है। उचित होगा कि इस मंत्रालय में एक हिंदी विभाग हो जो हिंदी के सर्वांगीण विकास और प्रचार-प्रसार का सारा काम सम्भाले। विदेशों में हिंदी की शिक्षा और उसके प्रचार-प्रसार का काम भी इसी विभाग को विदेश मंत्रालय के सहयोग से करना होगा।

इतनी देर तक मैं बात करता रहा कि भाषा या राजभाषा के क्षेत्र में जनता की सरकार से क्या अपेक्षाएं हैं? अब मैं सिक्के के दूसरी तरफ आपका ध्यान ले जाना चाहूंगा। हिंदी को राष्ट्रभाषा मानने और फिर संविधान में भारत संघ की राजभाषा बनाने का मुख्य आधार उसका भारत की सम्पर्क भाषा और जनभाषा होना ही था। राज्यों की राजभाषाएं भी वहां की जनभाषाएं ही बनीं। अर्थात् जो जनभाषा सो राजभाषा—जनतंत्र के लिए तो यह एक स्वयम्सिद्ध सूत्र कहा जाएगा और जनभाषा तो वही भाषा होगी, जिसे जनसाधारण सामान्य रूप में काम में लाता हो। क्या ऐसा हो रहा है हमारे देश में? मैं केवल हिंदी की बात करूंगा क्योंकि मैं जयपुर में बोल रहा हूं, मेरी अपनी भाषा हिंदी है और जनसाधारण द्वारा प्रयोग में लाए जाने के मामले में स्थिति हिंदी भाषियों में सबसे चिन्ताजनक है।

हममें से कितने लोग ऐसे हैं जो अपना दिन प्रतिदिन का काम हिंदी में करते हैं? उससे भी पहले एक बात कर लूं जो प्रत्यक्ष चमकती है। हिंदी भाषी क्षेत्रों के हमारे नगरों में कितने साइन बोर्ड हिंदी में होते हैं? दरअसल दिल्ली से जब भी मुझे जयपुर आने का अवसर मिलता है तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है—जयपुर का गुलाबी माहौल, इसका इतिहास, इसकी भव्य इमारतें, नगर की योजनाबद्धता तो हर किसी को आकर्षित करते हैं, पर मुझे सबसे अधिक खुशी होती है यह देखकर कि पुराने शहर में ही नहीं शहरपनाह के बाहर के नए शहर में भी लगभग शत-प्रतिशत साइन बोर्ड हिंदी में हैं। इसके विपरीत दिल्ली के कनाट प्लेस में खोजने पर भी कोई बोर्ड हिंदी में नहीं मिलेगा—कहीं कोई दिखाई ही पड़ जाए तो यह निश्चय ही किसी सरकारी उपक्रम या बैंक का होगा जो सरकारी नियम से बंधे होने के कारण हिंदी में बोर्ड लगाने को बाध्य हैं। निश्चय ही इस मामले में दिल्ली सबसे निकृष्ट है। दिल्ली से बाहर चलिए तो जैसे-जैसे दूर होते जाएंगे स्थिति बेहतर होती जाती है। फिर भी दिल्ली का असर ऐसा है कि बगल में ही उत्तरप्रदेश में स्थित नोएडा के बाजार भी कनाट प्लेस से होड़ लेते दिखते हैं।

अब बताइए कि हम में से कितने लोग ऐसे हैं जो अपने व्यक्तिगत पत्र या जमा खर्च का हिसाब हिंदी में लिखते हैं? अधिकांशतः तो हम पाते हैं कि लोग "माई डियर बेटा" या "माई डार्लिंग बेटा" को ही लिख रहे होते हैं। तो अगर जनता ही हिंदी का प्रयोग नहीं कर रही तो उसे राजभाषा बनाने का क्या औचित्य रह जाएगा और सरकार से हिंदी को प्रतिष्ठित करने की अपेक्षा कहां तक तर्कपूर्ण होगी? अपनी भाषा की उन्नति के लिए हर व्यक्ति का योगदान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। और अपनी भाषा की उन्नति क्यों आवश्यक है, इसका उत्तर सौ साल से भी पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दे गए थे कि

“निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।”

मेरा निवेदन है कि इसे आप केवल भावात्मक उद्गार न समझें। यह एक ठोस सच्चाई है जो आर्थिक जगत में भी पूरी तरह लागू होती है। आज के भूमण्डलीकरण (globalization) के युग में संसार के सभी देशों और अनेकानेक व्यक्तियों से हमारा सम्पर्क होगा, उनके साथ हमें वाणिज्य-व्यापार करना होगा।

मैनेजमेंट के कुछ गुरुओं का विचार है कि एक बड़े व्यापारी के साथ वही लाभदायक व्यापार कर सकता है जो स्वाभिमान की झलक दिखा सके। ऐसे व्यक्ति को दबाने से पहले बड़ा व्यापारी दस बार सोचेगा और उसकी इच्छाओं का सम्मान करेगा। स्वाभिमान या स्वदेशाभिमान की यह झलक अपनी भाषा के प्रति निष्ठा प्रदर्शित कर बड़ी आसानी से दिखाई जा सकती है। चीन ने यही किया है और भूमण्डलीय क्षेत्र में वह हमसे आगे निकल गया है।

अन्त में अपने दैनन्दिन के व्यवहार में अपनी भाषा के प्रयोग का निवेदन करते हुए 106 वर्ष पूर्व स्थापित काशी नागरी प्रचारिणी सभा का उल्लेख करना चाहूंगा। उस सभा की सदस्यता के लिए कोई चन्दा या दान नहीं लिया जाता था, बस आवेदक को शपथ पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ता था कि आज से मैं अपना सारा व्यक्तिगत पत्राचार और अन्य काम नागरी लिपि में हिंदी भाषा में करूंगा। हमें भी ऐसा व्रत लेने में संकोच नहीं होना चाहिए।

पूर्व सचिव, राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय)—सी-305 आनंदलोक ग्रुप हाउसिंग सोसायटी, फेज-1 मयूर विहार, नई दिल्ली-110049.

राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास

—डॉ. परमानंद पांचाल

हिंदी के विकास का स्वरूप आरंभ से ही सौहार्द समन्वय और सम्पर्क की भाषा का रहा है। पिछले एक हजार वर्षों के अपने इतिहास में हिंदी साहित्य का सृजन देश के विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न मतावलम्बियों और विभिन्न भाषा-भाषियों द्वारा व्यापक रूप से किया जाता रहा है। भारत की यही एक ऐसी भाषा है, जो भारत में व्यापक रूप से अधिकांश लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। प्राचीन काल में धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा के रूप में संस्कृत ने इस देश को एक सूत्र में रखने का ऐतिहासिक कार्य किया था। देश में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में प्रबुद्ध और मनीषी विद्वान, चाहे वे किसी भी प्रदेश के हों, इस भाषा में अपने ग्रन्थों का प्रणयन करना श्रेयस्कर मानते थे, जो हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक थी। हमारा सारा प्राचीन वाङ्मय इसी भाषा में उपलब्ध है। संस्कृत के अतिरिक्त इस विशाल देश में अनेक बोलियाँ और जनभाषाएँ भी रही हैं। विभिन्न प्राकृतों और अपभ्रंशों से देश की अनेक समृद्ध भाषाओं का विकास हुआ। हिंदी का उद्गम भी शौर सेनी अपभ्रंश में खोजा जा सकता है।

अशोक के शिलालेखों में देश के विभिन्न हिस्सों में स्थानीय भाषाओं, विशेषकर, पाली का प्रयोग मिलता है, जो ब्रह्मी लिपि में हैं। पश्चिमोत्तोर भाग में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किया गया है। इन लेखों से उस काल की राजकीय भाषा का पता चलता है। 600 ई. के आसपास संस्कृत के साथ-साथ पाली और प्राकृत के विभिन्न रूपों का प्रचलन रहा था। कालान्तर में उन प्राकृतों और उनसे उत्पन्न अपभ्रंशों का जनसम्पर्क की भाषा के रूप में प्रयोग किया गया, जो प्राचीन हिंदी का ही रूप थी। सन् 1000 ई तक आते-आते हिंदी के इस पूर्ववर्ती रूप में शासन के आदेश जारी होने लगे थे। 12वीं सदी तक मुख्यतः सभी भारतीय राज्यों में किसी न किसी रूप में संस्कृत ही राज्य भाषा थी। बीच-बीच में कुछ और भाषा रूपों के भी व्यापक प्रयोग हुए, जैसे 500 ई. पूर्व से पहली ई. तक पाली का व्यापक प्रयोग हुआ, जो मूलतः मध्य देशीय भाषा ही थी और हिंदी का एक प्रकार से प्राचीन रूप थी। अशोक के राज्यकाल की भाषा प्राचीन शौर सेनी अर्थात् शौर सेनी प्राकृत का पूर्व रूप थी। सन् 1 ई. से 500 ई. को प्राकृत काल माना जाता है, जिसमें शौर सेनी का सबसे अधिक प्रयोग होता था। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार कलिंग के जैन राजाओं तथा आंध्रवंशी राजाओं के यहां शौर सेनी ही राजभाषा थी। आगे चलकर इसी परम्परा में पश्चिम की साहित्यिक अपभ्रंश शौर सेनी का प्रयोग सातवाहन, प्रवर सैन, यशोवर्मन आदि परवर्ती राजाओं ने अपने यहां राजभाषा के रूप में किया। इस तरह मध्य देशीय भाषा के प्रयोग की परम्परा आगे बढ़ी। देखने से पता चलता है कि इस काल-खण्ड की रचनाओं में खड़ी बोली का

1. राजभाषा भारती (जुलाई-सितम्बर, 1994)—डॉ. भोलानाथ तिवारी का लेख 'राजभाषा हिंदी परम्परा और विकास—पृ. 39'

रूप भी उभरता दिखाई देता है, जो अपभ्रंश आदि के साथ-साथ जल कर धीरे-धीरे निखरता चला गया। सन् 1000 ई. के बाद 12वीं सदी में आकर इस भाषा के राजकाज की भाषा में प्रयोग के कुछ उदाहरण भी मिलते हैं। दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान और चित्तौड़ नरेश रावत समर सिंह के बीच पत्र व्यवहार का एक नमूना प्रस्तुत है:

और थारा चाकर घोड़ा को नामो कोठार सूं चला जाएगा और
 थूं जमा खातरी रीजो माई में राजस्थान बाद अणी परवानरी
 कोई अलंगणा करेगा जी ने श्री एकलीगंजी की आण है दूबे
 जानकी दास स. 1139 कातीबदी 3¹

मुसलमानों के भारत प्रवेश तक यहां स्वतः एक सम्पर्क भाषा का विकास हो रहा था जिसे स्वयं बाहर से आने वाले आक्रमणकारी शासकों ने भी स्वीकार किया था। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महमूद गज़नवी, मुहम्मद गौरी (1192ई.) अलतुत्मश (1211—1236) शेरशाह सूरी, अलाऊद्दीन खिलजी आदि शासकों के सिक्कों पर देवनागरी में तत्कालीन प्रचलित भाषा के प्रमाण मिलते हैं। यह स्थिति मुगल काल के आरम्भ तक बनी रही। पाकिस्तान से प्रकाशित एक पुस्तक में उसके लेखक ने लिखा है कि यदि बाबर और पचास वर्ष तक भारत में न आया होता तो; इस देश की भाषा का स्वरूप कुछ और ही होता। लगभग यही मत डॉ. सुनिति कुमार चाट्टुर्ज्या ने भी व्यक्त किया है। इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यहां एक भाषा स्वतः सम्पर्क की भाषा के रूप में उभर रही थी जो फारसी से अधिक प्रभावित नहीं थी।

फारसी राजभाषा :—

सिकंदर लोदी (1489—1517) के समय में राजा टोडरमल के अनुरोध पर फारसी को सरकारी जवान बनाने के सम्बंध में सर्वप्रथम प्रयास आरम्भ हुए और इस उद्देश्य का एक फरमान जारी हुआ। किन्तु लोधी शासन अधिक दिनों तक नहीं चला। अकबर के समय में उसी राजा टोडरमल के कहने पर इस आशय का पुनः एक शाही फरमान जारी हुआ और फारसी को इस देश की राजभाषा बना दिया गया, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन तक चलती रही। कहा जाता है कि 75 प्रतिशत पद फारसी जानने वालों को ही मिलते थे। इस प्रकार यहां फारसी का प्रचार प्रसार तीव्रगति से बढ़ा, जिसके फलस्वरूप बड़ी संख्या में फारसी और विदेशी शब्द भारतीय भाषाओं में घुल मिल गए। हिंदी में शासन सम्बन्धी हजारों शब्द फारसी के माध्यम से आ गए हैं जैसे सरकार, तहसीलदार, कानून, चपरासी, वकील, माल, मुंशी, दीवानी, फौजदारी, हाकिम, पेशवा, सिपाही, अदालत, अमीन, फौज, हवलदार, हमला, परगना, जमादार, दीवान, खत, पता, लिफाफा, शहर, जिला, हलवाई, दरवाजा, जलूस, आजादी, मुकदमा, फैसला, हिरासत, बरी, कैद, दारोगा, सजा, मिसिल, नक्षा, दस्तावेज आदि।

1. इस्मात भाषा भारती (अप्रैल-जून, 1992) डॉ. राम बाबू शर्मा का लेख—पृ. 18

फारसी के राजभाषा बनने के बावजूद देश के विभिन्न राज्यों जैसे राजपुताने के कई राजपूत शासकों और दक्षिण के बहमनी और आदिलशाही और कुतुबशाही राज्यों में हिंदी प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। फिर भी, 12वीं सदी के बाद आंशिक रूप से तत्कालीन केंद्रीय भाषा, पुरानी हिंदी को भी सहभाषा के रूप में स्वीकृति मिली थी क्योंकि अधिकतर कर्मचारी भारतीय थे और उन सभी के लिए फारसी का प्रयोग बहुत सरल नहीं था। हिसाब-किताब का तो काफी काम हिंदी में चलता था। 'अकबर द्वारा जारी अमल दस्तूर (कार्य विधि) की भाषा तत्कालीन प्रचलित शासन की भाषा का परिचय देती है। इसका एक नमूना देखिए "जमी बेती लाईक होईसो एक बिस्वे भी पड़ी रहे नही" (यदि जमीन खेती योग्य हो तो एक बिस्वा भी बेकार न पड़ी रहे)। दक्षिण में बहमनी राज्य में तो 'दक्खिनी' के रूप में प्रचलित हिंदी को राजभाषा का दर्जा भी प्रदान किया हुआ था। प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि शाही दफ्तरों में हिंदी भाषा प्रचलित थी और सल्तनत ने इसे सरकारी ज़बान का पद दे रखा था—

"बदफ्तर फारसी बर तरफ साख्ता हिंदवी कर्द व बहामना रा साहब दखल गरदनीद" अर्थात् बहमनी शासन में फारसी को दफ्तरों से निकाल दिया गया और हिंदवी को उसका स्थान दे दिया गया। (तारीख फरिश्ता जिल्द 2 पृ. 27)³ खानी-खान ने भी सरकारी कार्यालयों की भाषा में परिवर्तन का उल्लेख किया है।⁴

स्पष्ट है कि हिंदी का प्रचार प्रसार सार्वजनिक कार्यों में किसी न किसी रूप में होता था। मुगल शासन में, फारसी के राजभाषा होने के बावजूद हिंदी का भी प्रचलन किसी न किसी रूप में था। अकबर स्वयं भी हिंदी में रुचि लेते थे। उसके दरबार में रहीम खानखाना जैसे हिंदी के प्रसिद्ध कवि उसके नवरत्न के रूप में प्रतिष्ठित थे। अकबर के सोने के सिक्के पर नागरी लिपि में 'राम...सिया' शब्द अंकित थे। भारतीय भाषाओं में हिंदी स्वतः एक सम्पर्क राजभाषा के रूप में धीरे-धीरे आगे आ रही थी। हिंदी प्रदेश के बाहर भी उसका रूप निखर रहा था। मराठे राजाओं जैसे पेशवा, होल्कर और सिंधिया के दरबार में राजभाषा के रूप में हिंदी का भी प्रचलन था। मराठे अभिलेखों में तत्कालीन हिंदी के कुछ वाक्य प्राप्त हैं, जैसे "सकुंजी भौसंले कहे सो प्रमान करना" अस यहाँ शरीफ की किशत ब्रन्दी करी है या तहसील कर के षजानों नरसिंहगर पहुंचावे आदि।⁵ भूषण जैसे हिंदी कवि शिवाजी के दरबार की भी शोभा बढ़ाते थे। देश के विभिन्न क्षेत्रों में साधु, सन्त, सूफी और फकीर घूम-घूम कर सामान्य जनता में इसी भाषा में अपने उपदेश देते और अपने विचारों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक पहुंचाते थे। वे किसी राज्य सीमाओं में नहीं बंधे थे। कबीर और उसके अनुयायी अपनी साखी और शब्दी के बल पर देश में गुजरात से बंगाल तक

1. भारत की राष्ट्रीय संस्कृति—आबिद हुसैन—पृ. 55
2. इस्मात भाषा भारती (अप्रैल-जून, 1992) डॉ. राम बाबू शर्मा का लेख—पृ. 18
3. अलीगढ़ तारीख अदब उर्दू—पृ. 194
4. मन्त. खबुललुवाव, भाग 3, पृ. 359
5. राजभाषा भारती (जुलाई-सितम्बर, 1994) डॉ. भोलानाथ तिवारी का लेख—पृ. 39

और समस्त उत्तरी भारत में इस भाषा के माध्यम से जनमानस को उद्वेलित करते रहे। हिंदी के विकास में कबीर और उनकी शिष्य परम्परा की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पंजाब में गोरखनाथ, चरपटनाथ के अलावा सिख गुरुओं ने भी इसी मिली-जुली भाषा के रूप को अपनाया। गुरु नानकदेव, अंगद देव, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, तेगबहादुर और गुरु गोविन्द सिंहजी ने इसी भाषा में अपने सन्देश दिए थे। मध्यकालीन गुजरात में हिंदी ही अधिकांशतः विद्वानों की भाषा थी। मराठी के रामदास, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव जैसे सन्त हिंदी में भी रचना करते थे। उत्तर से दक्षिण की यात्रा करने वाले तीर्थ यात्रियों की भाषा भी हिंदी ही थी। हमारे तीर्थस्थल चाहे दक्षिण में हों पूर्व या पश्चिम के सागर तट पर हों या उत्तर में गिरिराज हिमालय के पर्वतीय अंचल में स्थित हों, सभी तीर्थ स्थलों में लोक-व्यवहार की भाषा हिंदी ही रही है। एक प्रकार से हिंदी को प्रादेशिकता से ऊपर उठाकर उसे सार्वदेशिक रूप देने में इस देश के साधु-सन्तों का सबसे अधिक योगदान रहा है। इन्हीं सन्तों ने 'साधुकड़ी' के नाम से हिंदी का प्रचार-प्रसार देश में व्यापक रूप से किया। इन्होंने ही धुर दक्षिण में विशेषकर केरल में 'गोसाईं' भाषा के रूप में इसका प्रचार किया। असम में 'महापुरुषिया' मत के प्रवर्तक शंकरदेव ने इसी भाषा में भक्ति का सन्देश दिया था। आन्ध्र के प्रसिद्ध कवि पद्मेना, बंगला के कवि गुणाकर तथा उड़िया कवि ब्रजनाथ ने भी अपनी कविताएं हिंदी में लिखी थी। इन सबका व्यापक प्रभाव था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसामान्य में सारे देश में हिंदी का व्यवहार बढ़ रहा था और स्वतः यह भाषा पूरे देश में सम्पर्क भाषा के रूप में उभर रही थी।

अंग्रेजी सरकारी भाषा :—

भारत में अंग्रेजी शासन स्थापित होने के बाद फारसी राजभाषा नहीं रही और 1837 में फारसी को कार्यालयों से निकाल दिया गया। फिर भी, उसका प्रभाव बाद तक भी बना रहा और किसी न किसी रूप में आज तक भी विद्यमान है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1837 में बंगाल में अंग्रेजी को राजभाषा घोषित किया। 1844 में लॉर्ड हाडिंग की ओर से एक घोषणा पत्र जारी किया गया, जिसके अनुसार सरकारी कर्मचारियों का चयन केवल अंग्रेजी भाषा ज्ञान और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्ति के आधार पर किया जाने लगा। लॉर्ड मैकाले द्वारा अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने की अनुशंसा के पीछे उसका उद्देश्य था— 'भारतीयता का उन्मूलन और पाश्चात्य संस्कृति का बीजारोपण।' उसका लक्ष्य दूरगामी था और उसकी नीति का उद्देश्य था यदि भारत छोड़ना भी पड़ा तो अंग्रेजी सभ्यता के रंग में रंगे अंग्रेजी माध्यम से सोचने वाले साहब, फिर भी, साम्राज्य की रक्षा करते रहेंगे। उसका यह कथन हमारी आखें खोल देने के लिए पर्याप्त है।

देश की स्वतंत्रता का आन्दोलन 1857 की जंगे-आजादी से ही आरम्भ हो गया था। इसकी विफलता के बाद देश के चितको, मनीषियों और राजनेताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक रूप देने के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता का अनुभव किया। महर्षि दयानन्द

1. Trading in Languages—Dr. Tulsi Ram—P. 111

2. Common Wealth Literature—Norman Jaffers—P. 15.

सरस्वती ने आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को माध्यम बनाया और अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में ही लिखा। बंगाल के केशवचन्द्र सेन ने स्वामीजी को संस्कृत के स्थान पर हिंदी में प्रचार करने का परामर्श दिया था। महात्मा गांधी का राष्ट्रीय आन्दोलन में पदार्पण हिंदी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी के महत्व को भली भांति समझा था। 1909 के हिंद स्वराज में उन्होंने लिखा था, हर एक पढ़े लिखे हिंदुस्तानी को और सब को हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। उन्होंने राष्ट्र की एकता के लिए हिंदी की 'राष्ट्रभाषा' के रूप में पहचान की और इसे राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख अंग स्वीकार किया। 20 अप्रैल 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए गांधीजी ने कहा था 'अंग्रेजी राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती'..... हिंदुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है'। गांधीजी के लिए हिंदी प्रचार, राष्ट्रीय आंदोलन का एक अंग था। उन के लिए हिंदी मात्र एक भाषा नहीं, बल्कि 'राष्ट्रभाषा' थी। अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी प्रचार के लिए उन्होंने 1918 में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की और अपने पुत्र श्री देवदास गांधी को हिंदी प्रचार के लिए मद्रास भेजा। गांधीजी इस भाषा को 'हिंदुस्तानी' शब्द देने के पक्ष में थे, जिससे कि उर्दू और हिंदी का कोई विवाद सामने न आए। वे हिंदी और उर्दू को एक ही भाषा मानते थे। उनका कहना था कि 'भाषा वही श्रेष्ठ है जिसको जन समूह सहज ही समझ ले'। प्रांतीय भाषाओं के संबंध में गांधीजी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा 'मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी अपनी प्रांतीय भाषाओं को अपने प्रांतों में योग्य स्थान नहीं देंगे तक तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं'। 1935 में महात्मा गांधी ने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की, फिर क्रमशः विभिन्न राज्यों में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएं स्थापित हुईं। उनके माध्यम से हिंदी प्रचार का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया हिंदी की लोकप्रियता बढ़ाने की दिशा में गांधीजी का यह स्तुत्य प्रयास था। यदि हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी का प्रचार न हुआ होता तो कदापि यह 'राजभाषा' के रूप में स्वीकृति न पाती।

हिंदी के महत्व को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने बहुत पहले ही समझ लिया था। राष्ट्रभाषा के आन्दोलन में महामना मालवीय जी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, डा. राममनोहर लोहिया, लाला लाजपतराय, डा. राजेन्द्र प्रसाद जैसे अग्रणी नेताओं की प्रसिद्ध भूमिका रही। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने खुले दिल से हिंदी का समर्थन किया। उन्होंने कहा था "मैं हमेशा से यह अनुभव करता रहा हूँ कि भारतवर्ष में एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है और वह हिंदी ही हो सकती है"। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को सर्वत्र स्वीकृति मिली। गांधीजी ने राष्ट्रभाषा के लिए पांच गुणों का होना आवश्यक माना था जिन पर हिंदी खरी उतरती थी। जनवरी, 1946 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की रजत जयंती का उद्घाटन करने के बाद, अपनी सायंकालीन प्रार्थना सभा में गांधीजी ने कहा था "कुछ समय के बाद हिंदुस्तान आज़ाद होगा और आज़ाद हिंदुस्तान की राजभाषा हिंदी होगी। इस लिए मैं युवा पीढ़ी से अपील करता हूँ कि वह

लोक मंगल के प्रतीक : आदि देव भगवान शिव

कुलदीप कुमार

भारतीय जनमानस में भगवान शंकर की पूजा का एक विशेष महत्व है। भगवान शिव शक्ति स्वरूप हैं, आसुरी शक्तियों के संहारक हैं और भक्तों के हितैषी भी। वे देवताओं के देव और पूरे विश्व के पालनहार हैं। प्रलय के गर्भ में ही प्राणी मात्र का अंतिम कल्याण है। जीवन और मृत्यु साधारणतया विपरीत अर्थ वाले लगते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। जीव के जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है और मोक्ष भगवान शंकर की आराधना का प्रतीक है।

शिव को आदि देव कहा जाता है। द्रविड़ों में आर्यतर कहा जाता है। शिव का अर्थ है कल्याण और उनका नाम ही कल्याणकारी और वे यथार्थ में हैं भी कल्याण रूप। ब्रह्म स्वरूप होने के कारण भगवान शिव निराकार कहे गए हैं, चूंकि वे अत्यन्त रूपवान हैं इसलिए उन्हें साकार भी कहा जाता है। इन दोनों ही रूपों में आदि देव भगवान शिव की पूजा की जाती है। लिंग साक्षात् ब्रह्मा का प्रतीक है। शिव के भक्तों ने जहां-जहां उनकी आराधना की, वहीं-वहीं वह अवतार लिंग रूप में स्थित हो गए।

**द्वादश लिंग प्रधान प्रभु, विश्वनाथ महाराज।
महिमा कहि-कहि जासुगण, राख्यो सकल समाज॥**

भारत में स्थापित बारह शिव लिंगों को द्वादश ज्योतिर्लिंग के नामों से जाना जाता है, जो इस प्रकार हैं—

श्री सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव ने सबसे पहला अवतार सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में चन्द्रमा के दुःखों का विनाश करने के लिए लिया था। इनका पूजन करने से क्षय रोग तथा कुष्ठ रोग का निवारण हो जाता है। कहते हैं कि पूर्व काल में चन्द्रमा ने इनकी पूजा की थी। यह स्थान पाटण (सौराष्ट्र) में है। इसी के पास में एक चन्द्र कुण्ड है जिसमें स्नान करने से क्षयरोग एवं कुष्ठ रोग दूर हो जाते हैं।

श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव का यह दूसरा अवतार है। वह परम प्रसन्नतापूर्वक अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत से उतर कर लिंग रूप में श्री शैल पर्वत पर पार्वती जी के साथ पधारे थे। इस ज्योतिर्लिंग को मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग (मल्लिका-पार्वती, अर्जुन-शिव) नाम से जाना जाता है। पुत्र प्राप्ति के लिए इनकी स्तुति की जाती है। यह मद्रास में प्रतिष्ठित है। इसे दक्षिण का काशी भी कहा जाता है।

श्री महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग

तीसरे ज्योतिर्लिंग का आविर्भाव उज्जैन नगर में हुआ। दूषण नामक असुर दूसरों को हानि पहुंचाने के लिए उज्जैन जा पहुंचा। तब वेद नामक एक ब्राह्मण पुत्र ने भगवान शिव का पार्थिव पूजन किया। जिससे भगवान शिव तुरन्त प्रकट हुए और उन्होंने हुंकार के साथ उस दूषण का संहार कर दिया। तत्पश्चात् देवता गणों की स्तुति पर भगवान शिव वहीं प्रतिष्ठित हो गए और महाकाल या महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहां तन्त्रिक अपनी तन्त्र साधना के लिए आते हैं। यह उज्जैन (म. प्र.) में क्षिप्रा नामक नदी के तट पर स्थित है।

श्री ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

विन्ध्यगिरि ने भक्तिपूर्वक विधि-विधान से पार्थिव लिंग की स्थापना की। उसी लिंग से मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग प्रकट हुए। देवताओं की प्रार्थना करने पर यह ज्योतिर्लिंग दो रूपों में विभाजित हो गया। उनमें से एक भाग साकार मूर्ति रूप में प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पार्थिक लिंग परमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनकी पूजा करने से सारे मनोरथ एवं कार्य पूर्ण हो जाते हैं। यह मालवा में नर्मदा नदी तट पर स्थित है। यह ज्योतिर्लिंग चौथा अवतार है।

श्री केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग

पांचवे अवतार हैं केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग। केदारनाथ पर्वत पर श्री हरि के नर-नारायण अवतार हैं। उनकी स्तुति पर शिव भगवान हिमगिरि के केदार शिखर पर प्रतिष्ठित हो गए। भगवान शिव का कड़ा या कंगन इन पर चढ़ाने से सभी पापों से मुक्ति हो जाती है। यह उत्तर प्रदेश में केदारनाथ पर्वत (चमोली) में प्रतिष्ठित हैं।

श्री भामा शंकरेश्वर ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव भीमासुर का संहार करने के लिए अपने छोटे रूप में अवतरित हुए। राजा सुदक्षिण शिव जी का परम भक्त था। भीमासुर उन्हें सदैव परेशान किया करता था। तब भगवान शिव अपने भक्त की रक्षा के लिए प्रकट हुए और भीमासुर का वध कर डाला। राजा सुदक्षिण की प्रार्थना पर भगवान शिव डाकिनी में लिंग-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गए जो श्री भीमा शंकरेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध है। यह ज्योतिर्लिंग बम्बई-पुणे मार्ग पर भीमा नदी के किनारे प्रतिष्ठित है।

श्री विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग

मुक्तिदाता सिद्धस्वरूप स्वयं भगवान शिव काशी नगरी में सातवें अवतार के रूप में अवतरित हुए। जो विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग का केवल ध्यान ही करते हैं वह मोक्ष के भागी हो जाते हैं। जिसकी कोई गति नहीं उसकी गति काशी में हो जाती है। यह सिद्ध ज्योतिर्लिंग काशी (उत्तर प्रदेश) में प्रतिष्ठित है।

श्री त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग

आठवें त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग गौतम ऋषि की प्रार्थना करने पर गौतमी नदी के तट पर प्रकट हुए थे। यही ज्योतिर्लिंग त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से विख्यात हुए तथा गौतमी गोदावरी नाम से विख्यात हुई। यह ज्योतिर्लिंग महापातकों का नाश करने वाला है। यह ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र में नासिक शहर के गोदावरी के तट पर स्थित है।

श्री वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव की पूजा अर्चना करने के बाद रावण उनके पार्थिव लिंग को लंका ले जाने के लिए तैयार हुआ पर भगवान शिव बिहार के चितभूमि में ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। यह भगवान शिव के नवें ज्योतिर्लिंग है जो वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से जाने जाते हैं।

श्री नागेश्वर ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव दारूक नामक राक्षस को मारने तथा अपने वैश्य भक्त सुप्रिय की उससे रक्षा करने के लिए अपने दसवें अवतार रूप में अवतरित हुए थे। भगवान शिव लोगों का उपकार करने के लिए अम्बिका सहित ज्योतिर्लिंग स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गए। नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध यह शिवलिंग नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से बड़ौदा (गुजरात) के दारुकावन में प्रतिष्ठित हैं।

श्री रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग

भगवान शिव का ग्यारहवां अवतार रामेश्वरावतार कहलाता है। श्री रामचन्द्र जी ने इस लिंग की स्थापना की थी। उनकी पूजा से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें विजयी होने का वरदान दिया था तथा श्री राम के प्रार्थना करने पर वहीं स्थित हो गए। यह ज्योतिर्लिंग रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग नाम से प्रसिद्ध है तथा मद्रास के रामनाथम जिले में समुद्र के किनारे प्रतिष्ठित हैं।

श्री घुरमेश्वर ज्योतिर्लिंग

घुरमा भगवान शिव की परम भक्त थी। उनकी बड़ी बहन सुदेहा ने ईर्ष्यावश उसके पुत्र को मार डाला, किन्तु भगवान शिव ने इनके पुत्र को जीवित कर दिया। कामनाओं को पूर्ण करने वाले शम्भु घुरमा की प्रार्थना पर वहीं प्रतिष्ठित हो गए तथा घुरमा के नाम से घुरमेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से विख्यात हो गए। यह ज्योतिर्लिंग भगवान शिव का बारहवां शिव लिंग है जो हैदराबाद के वेरुल गांव में स्थित है। यह स्थान शिवालय नाम से प्रसिद्ध है। शिव पुराण में लिखा है “जो मनुष्य ज्योतिर्लिंगों की कथा भक्तिपूर्वक पढ़ता है या सुनता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। प्रलय की आग में सब कुछ जल जाता है और शिवलिंग में ही समा जाता है सारे वेद, शास्त्र शिवलिंग में ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टि के आदि में इसी शिवलिंग से ही सबकी उत्पत्ति होती है।”

शिव की जो मूर्तियां हैं उनका लक्षण-वैविध्य बड़ी आसानी से पता चलता है। शिव महानिद्रा के देवता हैं वे श्वेत नन्दी पर उमा के साथ शोभित हैं। नर, नाग, गधर्व, किन्नर देवता व उनके अधिपति इन्द्र, देवगुरु बृहस्पति सब शिव की वंदना करते हैं यहां तक कि अंधकार प्रेमी आत्माएं, भूत-प्रेत, पिशाच असुर, यक्ष, बेताल, बिच्छु, सांप उनकी सेवा में रहने को अपना धर्म

मानते हैं विसंगतियों के देवता हैं भोले। शिव प्रकाश, अंधकार व सभी जीवों के आराध्य हैं शिव का रंग गोरा है तभी तो उन्हें गौरांग कहते हैं, उनकी जंघाएं रत्न जैसी चमक बिखेरती हैं। ज्ञान कहते हैं प्रकाश को। प्रकाशानन्द सत्व का गुण है और शिव तमोगुण के स्वरूप हैं। इसीलिए, वे तम के प्रतिनिधि हैं। तम काल होता है इसलिए, उन्हें काल होना चाहिए लेकिन शास्त्रों के मुताबिक तम व प्रकाश का अटूट संबंध है इसी कारण सत्वगुणी विष्णु का बाहरी रंग श्याम है और तमोगुणी शिव की मूर्ति में सफेद है। संसार के सभी रंग अपनी विविधता छोड़कर शिव में समाए रहते हैं, इस कारण शिव का रंग सफेद है।

शिव का नाम त्र्यंबक है अर्थात् तीन नेत्र। ये सूर्य, चन्द्र और अग्नि के परिचायक है जो आकाश अंतरिक्ष और धरती को प्रकाशमान करने वाले प्रकाश के सुल कारण हैं इन तीनों नेत्रों से शिव भूत, वर्तमान व भविष्य की बातों को जान लेते हैं। शिव का ऊर्ध्व नेत्र अग्नि स्वरूप है वह प्राय अंदर से बन्द रहता है लेकिन खुलने पर हर जीव राख बन जाती हैं कामदेव इसी नेत्र से भस्म हो गए थे।

एक नाम है—चन्द्र मौलि। वे पंचमी के चन्द्रमा का मुकुट पहनते हैं चन्द्रमा तीसरे नेत्र के बिल्कुल पास है, अर्थ यह है कि विनाश और जन्म दोनों एक साथ चलते हैं।

शिव गंगाधर है उनकी जटा में गंगा रहती है इसी से होकर गंगा पृथ्वी पर आई। शिव का नाम धर्जटि है। उनकी जटाएं वायुत्त का प्रतिनिधि है शिव की चार भुजाएं उनके बल को प्रकट करती हैं। उनका त्रिशूल सत्व रज व तम इन गुणों का स्वरूप है। इसके अतिरिक्त इन गुणों में सर्जक धास्क व विध्वंसक रूप मौजूद हैं त्रिशूल आध्यात्मिक मानसिक और भौतिक स्तर पर कर्म फलप्रद हैं।

पाशुपत उनका प्रधान अस्त्र है। इसी से उन्होंने दैत्यों का विनाश किया है। शिव परशु धारण करते हैं उन्होंने इसे परशुराम को दिया था शिव हमेशा देवताओं की सहायता के लिए अपने पास धनुष रखते थे, यह धनुष इन्द्र धनुष की तरह है जो सात मुंह वाले जहरीले दांतों वाले सांप से निर्मित है। शिव के गले में सांप हार बनाए हुए हैं।

उनका एक नाम नीलकंठ है क्योंकि विश्व भर की रक्षा के लिए वे हलाहल विषपान करते हैं तभी तो उन्हें नीलकंठ कहा जाता है। शिव के पास डमरू है। इसी से सभी विद्याएं निकली हैं। शिव नटराज हैं, नाट्य शास्त्र की उत्पत्ति उन्होंने की है, संगीत के वे मूलस्तोत हैं।

शिव का वाहन वृषभ है, वह बलिष्ठ हैं। वह अपने सींगों पर पृथ्वी को धारण करता है। दक्ष प्रजापति ने शिव को यह वृषभ दिया था दक्ष शिव के ससुर थे। वृषभ शिव के ध्वज का चिह्न है नंदी पर सवार होकर शिव पूरे संसार की रक्षा करते हैं। नंदी सदगुण और इंसाफ का प्रतीक नंदी-वृषभ खेती प्रधान भारत का आधार है।

भगवान शंकर क्रोधावतार भी हैं और करुणावतार भी। इसलिए कहा गया है—देवताओं में सबसे सरल शिव को रिझाना है। शिव गुस्से में हों, तो भी उन्हें मनाना सहज है।

एम-128, प्लॉट नं० 29, रामाकृष्ण विहार, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

तकनीकी शिक्षा का माध्यम और भारतीय भाषाएं

—विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु'

1. भारतीय मनीषा विश्व में श्रेष्ठतम है :

1.1 यह कोई आत्मश्लाघा नहीं है। भारतीय प्रतिभा और भारतीय मनीषा की श्रेष्ठता दुनिया स्वीकारती है। सभी देशों में राष्ट्र की उन्नति और प्रगति के लिए, उनके विकास और कल्याण के लिए भारतीय विद्वानों की मांग है। अति विकसित राष्ट्र अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस, जर्मनी आदि भारतीय विद्वानों की सहायता से ही अपने उद्देश्यों में सफल हुए हैं और हो रहे हैं। तथ्य तो यह है कि इधर हजार-पांच-सौ वर्ष की गुलामी को छोड़ कर सुदूर भूत काल में भी शिक्षा के क्षेत्र में भारत विश्व-गुरु रहा है जिसके प्रमाण ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में पद-पद पर विद्यमान हैं। संसार आश्चर्य-चकित है यह जानकर कि विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय तक्षशिला में ईसा से 700 वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था जिसमें संसार भर के 10500 से अधिक विद्यार्थी 60 से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे। ईसा-पूर्व चौथी शती में स्थापित नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन भारत की महानतम उपलब्धि थी। विद्वान् 'भारत' की व्युत्पत्ति करते हुए कहते हैं कि भा=ज्ञान या प्रकाश (की खोज और प्राप्ति) में रत= लगे हुए लोग ही 'भारत' हैं और जहां वे रहते हैं, वह देश ही 'भारत' है।

2. व्यावहारिक या तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से भी :

2.1 विज्ञान या व्यावहारिक ज्ञान के क्षेत्र में भी यह सर्वविदित है कि चिकित्सा का मनुष्य को ज्ञात सर्व-प्रथम विज्ञान आयुर्वेद है। आयुर्वेद के पितामह चरक ने 2500 वर्ष पूर्व इसकी प्रस्तुति की थी; और सुश्रुत शल्य-क्रिया के पितामह थे। 2600 वर्ष पूर्व वे और उनके समय के चिकित्सक सभी प्रकार की जटिल शल्य-क्रियाएं सम्पन्न करते थे। चिकित्सा-सम्बन्धी उच्च स्तर की जानकारी बहुत-सी प्राचीन पुस्तकों में मिलती हैं।

2.2 अन्य व्यावहारिक विज्ञान, इंजीनियरिंग में भी भारत पिछड़ा नहीं था। नौ-चालन की कला का जन्म 6000 वर्ष पूर्व सिन्धु नदी में हुआ था। संस्कृत शब्द 'नौ-गति' से ही 'नैविगेशन' और 'नौ' से ही 'नेवी' बने हैं। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा की खुदाइयों से मिले अवशेष नगर-नियोजन की उत्कृष्टता प्रकट करते हैं। मिहिरावली (दिल्ली) का प्रसिद्ध लौह-स्तम्भ न केवल आकार और वजन की दृष्टि से, बल्कि रचना की दृष्टि से भी अभी तक अद्वितीय ही है कि उसमें एक-हजार साल की सर्दी-गर्मी-वर्षा सहन करने पर भी अभी तक जंग नहीं लगा। सुपथ, अच्छी सड़कों से कोई देश समृद्धि प्राप्त करता है—महामार्ग-इंजीनियरी का यह महत्वपूर्ण सिद्धांत भारतीय-सड़क-संस्था (इंडियन-रोड्स-कांग्रेस) में ही नहीं, समस्त सभ्य संसार में मान्य है।

इसका मूल वेद का 'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्.....' (यजु : 40/16) मंत्र ही तो है जो हम नित्य ईश-प्रार्थना करते हुए गाया करते हैं।

2.3 विद्वान सर जान मार्शल 1912-13 में प्रकाशित अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'भारत का पुरातात्विक सर्वेक्षण' (आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया) में लिखते हैं कि 'शिल्प, वास्तु और भवन-निर्माण की रचनाओं को, जो भारत में विद्यमान हैं, देखकर कोई भी उनके निर्माताओं के ज्ञान की गहराई, विचारों की ऊंचाई और कला की प्रौढ़ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वे शिल्पी यदि आज भी जीवित होते तो शायद वर्तमान कलाविदों से सीखने-योग्य कुछ न पाते।' शिक्षा के क्षेत्र में लगे हुए भारत-वंशी विद्वानों का सोया स्वाभिमान जगाने के लिए इससे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

3. फिर अंग्रेजी का चस्का क्यों ?

3.1 ये सारी उपलब्धियां क्या अंग्रेजी के कारण थीं ? सारी शिक्षा स्वभाषा में ही तो दी जाती थी। फिर क्या कारण है कि विज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में ही अब हम पराई भाषा की वैसाखी के बिना एक कदम भी चलने में लड़खड़ाते हैं, हिचकिचाते हैं ? क्या कारण है कि हम प्राथमिक और पूर्व-माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर भी अंग्रेजी के मोहताज हो रहे हैं ? दुनियां जानती है, शिक्षा-शास्त्री पुकार-पुकार कर कहते हैं, राज-नेतां और सांसद निर्देश देते हैं, सर्वोच्च न्यायालय तक आदेश देते हैं कि बच्चों को शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जाए; फिर भी अंग्रेजी फैलती जा रही है, मानों यहां भाषा नाम की कोई चीज ही नहीं और रिक्त स्थान भरने के लिए ही अंग्रेजी बेधड़क घुसती चली आ रही है। आखिर क्यों ? यह देश का ऐसा दुर्भाग्य है, जिसकी मिसाल सभ्य संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलेगी।

3.2 कुछ भी समझना और समझाना अपनी भाषा में ही सम्भव होता है। यदि कोई बात भली भांति समझ में आ गई है, तो उसकी पुनः सत्वर अभिव्यक्ति अपनी भाषा में ही सरलता-पूर्वक की जा सकती है; किन्तु यदि बात समझ में नहीं आई तो उसे तोते के समान रटकर उगल देना ही सम्भव है। अपनी भाषा का माध्यम अपनाए बिना अधिसंख्य छात्र रट्टू तोता बनकर ही परीक्षाओं में बैठते, उत्तर लिखते और पास कर दिए जाते हैं।

3.3 इसी प्रकार अध्यापकों/प्राध्यापकों को भी जो बात भली भांति हृदयंगम है, उसे अपनी भाषा में भी समझा देने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। किन्तु यदि वे सचमुच कठिनाई अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट है कि उन्होंने विषय हृदयंगम नहीं किया (स्पष्टवादिता के लिए कृपया क्षमा करें) उन्होंने भी केवल रट लिया है। या फिर अंग्रेजी की मिथ्या-श्रेष्ठता-भावना का दम्भ पालने के लिए अथवा अपनी अयोग्यता छिपाने के लिए ही वे कह बैठते हैं कि वे अपनी भाषा में पढ़ा ही नहीं सकते। भारत के अध्यापक-प्राध्यापक जिनकी श्रेष्ठतम प्रतिभा और मनीषा की धाक सारे संसार में है, अगर कहें कि अपनी भाषा में शिक्षा देने में उन्हें कठिनाई है, तो सहसा विश्वास नहीं हो सकता—उन्हें रट्टू तोता समझना भी उनका अपमान करना ही है। ऐसे विद्वान

जिनके लिए ये कार्यशालाएं आयोजित करने की आवश्यकता हो रही है। वास्तव में संकोच या 'झिझक' के शिकार हैं। यह झिझक ही दूर होनी चाहिए। अब जरा सोचिए कि यह झिझक क्यों है। अंग्रेजी का चस्का क्यों लगा है? और यह क्यों सुरसा के मुंह की भांति फैलता ही जा रहा है?

4. भारत के गृह-मंत्री जी का ऐतिहासिक निष्कर्ष :

4.1 यह झिझक या चस्का क्यों है, इस पर प्रकाश डालते हुए हमारे गृह-मंत्री माननीय लालकृष्ण आडवाणी ने 14 सितम्बर, 2000 को राजधानी दिल्ली में हिंदी-दिवस समारोह में ठीक ही कहा है कि आजादी मिलते ही, इजराइल की भांति हम भी अपनी भाषा अपना लेते तो कठिनाई न होती; किन्तु हमने 15 वर्ष तक अंग्रेजी से चिपके रहने का निर्णय कर लिया और अब उसके शिकंजे में फंस गए। यह हमारी भारी भूल थी। उन्होंने बहुत ही सामयिक सलाह दी है कि "हम हीन भावना को त्यागकर अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करें। अपनी भाषा के उत्थान के लिए सांस्कृतिक चेतना पैदा करना जरूरी है।" (नवभारत टाइम्स का विद्या टाइम्स परिशिष्ट दि. 3-10-2000 ई.)। बस, हमें हीन भावना त्यागकर अपना खोया हुआ स्वाभिमान जगाना है।

4.2 सन् 1981 की जन-गणना के अनुसार अंग्रेजी आधे प्रतिशत से भी कम भारतीयों की मातृभाषा है। यह भारतीय भाषा ही नहीं है। फिर भी हम इसके शिकंजे में कसे हुए हैं, यह हमारी दासता का अभिशाप है। पहले यवन आक्रांता आए और स्वभाषा भूल फारसी सीखना गौरवास्पद हुआ। फिर अंग्रेज आए और अंग्रेजी थोपी गई; वही श्रेष्ठता की प्रतीक हुई; उन्नति का साधन बनी; देशी भाषाएं गंवारपन की निशानी हो गई; वेदों में उपलब्ध भारतीय ज्ञान के भ्रष्ट अंग्रेजी अनुवाद कराए गए; वही विश्व में प्रचारित किए गए; वही पढ़ा-पढ़ा कर हमारे भी दिमागों में दूसा गया कि हम मूर्ख चरवाहों; गडरियों की संतान हैं; और अंग्रेजी शासन हमें सभ्य बनाने के लिए आया है। हमें अपने साहित्य से, अपनी श्रेष्ठ संस्कृति से काटकर दीन-हीन घोषित करके हमारा स्वाभिमान नष्ट किया गया, और हम जर-खरीद गुलाम बने 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' गा उठे।

4.3 इस प्रकार हमारी शिक्षा पर अधिकार करके, हमारा मत-परिवर्तन (ब्रेन-वाशिंग) करके, अंग्रेजी को हमारे लिए अर्थ-काम-सिद्धि का साधन बनाकर हमें दासता-पाश में ऐसा कसा गया कि आजाद होकर भी हम उनके दास-भक्त बने रहे। मुट्ठी भर अंग्रेज जिस अंग्रेजी द्वारा अपने भक्त बनाए हुए नौकरशाहों के बल पर करोड़ों पर शासन करते रहे उसे निकाल फेंकने में हम ढीले पड़ गए और गुलाम-मानसिकता वाले अंग्रेजी-भक्त नौकरशाहों को सहन करते रहे।

4.4 हमारे माननीय गृह-मंत्री जी ने इसे राजनीतिक समयानुकूल सुविचारित और संयत भाषा में 'भारी भूल' कहा है; किन्तु वास्तव में यह एक गम्भीर राष्ट्र-विरोधी षड्यंत्र था, अंग्रेजों

1. कवि ने ठीक ही कहा है,

"आक्रांता करता, सदा, जन-संस्कृति का नाश"।

शिक्षा पर अधिकार कर कसे दासता-पाश ॥" (गुप्त-बंधु, अनल-प्रकाश, किरण 8, मध्य खण्ड 9)

के जाने पर भारत को स्वतंत्र घोषित करके भी अपना गुलाम बनाए रखने का । उसी षड्यंत्र के फूलने फलने के लिए एक सदी से दुश्मन बने रहकर भी हमारे आका लड़ाई खत्म करके रातों-रात हमारे शुभ-चिंतक, सलाहकार, मित्र बन गए और हम उनकी कुटिल चाल में फंस गए । यह एक ऐतिहासिक निष्कर्ष है कि संस्कृति-अपहारक अंग्रेजी का पल्ला छोड़ने में जब तक हम हिचकिचाते रहेंगे तब तक भाषायी आजादी आकाश-कुसुम ही बनी रहेगी और हमारा पूर्ण स्वराज का स्वप्न अधूरा ही रहेगा ।

5. स्वभाषा और सुभाषा का भ्रम :

5.1 सरकार ने 1955 में ही सरकारी काम के घंटों में ही सरकारी खर्च से हिंदी सिखाने की योजना चालू कर दी थी । किन्तु तीस-चालीस साल सरकारी नौकरी में रहकर, स्वभाषा हिन्दी की निर्धारित सभी परीक्षाएं पास करके भी, जो हिंदी में काम न कर सकें उनकी बुद्धि की बलिहारी है । यह संसार में सर्वश्रेष्ठ समझी जाने वाली भारतीय प्रतिभा और मनीषा के लिए क्या लज्जाजनक नहीं है ? किन्तु ऐसा है; तो मजबूरन यही मानना पड़ता है कि ये अंग्रेजी-भक्त लोग इसी षड्यंत्र में लिप्त 'घर के भेदी' बन गए हैं ।

5.2 'स्व' और 'सु' उपसर्गों का टकराव इतिहास में मानव-सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुआ है । इसे 'शासन' शब्द को जोड़कर देखिए । जनतंत्र विश्व में सबसे अच्छी शासन-पद्धति समझी जाती है, जिसकी परिभाषा 'जनता के लिए, जनता द्वारा, जनता का शासन' सभी विद्वानों द्वारा मान्य है और जनता का अर्थ भी अधिसंख्य जन-समाज समझा जाता है, जो चुनावों का आधार होता है? फिर समाज के अधिकार संपन्न वर्ग में मानव की स्वाभाविक दुर्बलता के कारण 'सु' उपसर्ग (सुशासन अर्थात् अच्छा शासन चाहे वह किसी का हो अपना या पराया) प्रिय होता रहा, क्योंकि इसमें अल्पशासक वर्ग शासितों पर कर-भार डालकर (और प्रायः उनका शोषण तक करके) सम्पन्न और सुविधा-भोगी जीवन जीता रहा है । किन्तु अधिकार-वंचित वर्ग में, जो प्रायः अधिसंख्य श्रमजीवी ही होता है, मानव के स्वाभाविक स्वाभिमान के कारण 'स्व'-उपसर्ग (स्वशासन अर्थात् अपना शासन चाहे वह अच्छा हो या बुरा) प्रिय और वांछनीय होता रहा है ।

5.3 इसी क्रम में सुशासन के लिए स्वशासन की बलि चढ़ाने तक की नौबत आ जाती है और कहा जाता है कि 'कुराज' के बजाय 'सुराज' की स्थापना करने के लिए किसी भी राजा का स्वागत होना चाहिए, फिर चाहे वह विदेशी ही क्यों न हो । ब्रिटिश साम्राज्यवाद या पूंजीवाद भी जब भारत में पूरी तरह जम गया तो वही शासन 'सुराज' कह कर जनता में लोकप्रिय बनाया गया और स्वभाषा की बलि देकर हमें भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कृति से काटकर विदेशी भाषा अंग्रेजी की ललक पैदा की गई । कहा गया कि यही रोजी-रोटी, समृद्धि और अधिकार-सम्पन्नता प्रदान करने वाली 'सुभाषा' है । सुभाषा की यही मिथ्या कसौटी लोकप्रिय करके

2. वेद का निर्देश है "वृषीमहे सख्याय प्रियाय शरा....." (ऋग्वेद 4/41/71) अर्थात् एक दूसरे के प्रति सखा-भाव और परस्पर कल्याण-कामना बनाए रखने के लिए ही हम वीर (शासक) चुनते हैं ।

अंग्रेजी का चस्का बढ़ाया गया, जनता को बुद्ध बनाया गया और अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी अंग्रेजी की गुलामी बरकरार रखी गई। यही वह कुटिल चाल थी। गहरा षड्यंत्र था उन चंद लोगों के स्वार्थ-साधन के लिए, जो अंग्रेजी की अनिवार्यता का आश्रय लेकर अधिकार और सत्ता अपने अल्प वर्ग के हाथों में ही बनाए रखना चाहते हैं।

6. षड्यंत्र का भंडा-फोड़ :

6.1 यह कुटिल चाल पहिचानने में उन्नीसवीं सदी के तमाम देश-भक्त, विद्वान, लेखक, चिंतक, समाज-सुधारक विफल रहे और अंग्रेजी राज की, 'सुराज' कहकर प्रशंसा करते रहे। किसी ने यह ध्यान नहीं दिया कि मिथ्या कसौटी के कारण 'सु' के लिए 'स्व' की बलि चढ़ा देने से तथाकथित 'सुराज' तानाशाही का रूप ले सकता है बस अपवाद थे तो केवल एक महर्षि दयानंद जिन्होंने वेद-ज्ञान के आधार पर डंके की चोट कहा कि "स्वदेशी राज कितना भी बुरा हो, वह अच्छे-से-अच्छे विदेशी राज से अच्छा ही है।" इस प्रकार 'स्वराज' को उस छद्म 'सुराज' पर वरीयता देकर उन्होंने षड्यंत्र का भंडा-फोड़ किया।

6.2 महर्षि दयानंद ने न केवल स्वदेशी राज्य पर जोर दिया वरन् स्वदेशी भाषा-भूषा और स्वदेशी शिक्षा तक का खुलकर प्रचार किया। इस क्रांतिकारी आह्वान पर ब्रिटिश सरकार ने तो उन्हें सबसे खतरनाक संन्यासी घोषित किया किन्तु सभी राष्ट्र-भक्त चिंतक और समाज-सुधारक उनके अनुयायी बने और स्वतंत्रता सेनानी 'होम-रूल' के बजाय पूर्ण स्वराज की मांग करने लगे। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह स्वदेशी आंदोलन ही हो गया जिसकी पताका योगिराज अरविंद और फिर महात्मा गांधी ने फहराई थी। गांधीजी का सपना साकार करने में सभी स्वतंत्रता सेनानी एकजुट हो गए। फलस्वरूप आजादी मिली किन्तु अधूरी ही। भाषायी आजादी नहीं मिली। उसे भी प्राप्त करके अधूरी आजादी को पूर्ण स्वराज का रूप अभी देना है। यह एक पवित्र दायित्व है जो आप सब देश-भक्त शिक्षकों-अध्यापकों-प्राध्यापकों के सहयोग से ही पूरा हो सकता है।

7. हमारी स्वभाषा हिंदी तो सभाषा भी है :

7.1 'स्व' और 'सु' उपसर्गों में चाहे जितना टकराव, वर्ग-संघर्ष, विरोध और प्रतिकूलता हो, भारतीय भाषा के साथ मिलकर दोनों एक हो जाते हैं : यानी हमारी स्वभाषा (भारतीय भाषा) ही सुभाषा (श्रेष्ठतम भाषा) भी है। संस्कृत संसार की सभी भाषाओं की जननी है और यह अत्यंत मधुर, वैज्ञानिक, पूर्णतया परिष्कृत (संस्कार की हुई अतएव 'संस्कृत'), सर्व-समर्थ, सर्वथा सक्षम और पूर्णतः परिपूर्ण जीवंत, भाषा है, ऐसा सभी श्रेष्ठ निष्पक्ष भाषा-विद् मानते हैं। सभी भारतीय भाषाएं देश-काल-भेद के अनुसार सुधरकर संस्कृत क्रे ही सभी सद्गुण ग्रहण

3. वेद का निर्देश है : " व्यचिष्टे बहुप्राप्ये यतेमहि स्वराज्ये " (ऋग्वेद 5/66/6) । अर्थात् विस्तृत तथा बहुतों द्वारा जिसका पालन किया जाता है, ऐसे स्वराज्य में सब लोगों का हित-साधन करने के लिए हम सब विद्वान मिलकर यत्न करेंगे।

4. कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 26 जनवरी को नेहरूजी के सभापतित्व में 'पूर्ण स्वराज्य' का संकल्प लिया गया था।

करते हुए श्रेष्ठता के शिखर पर पहुंची हैं। सभी एक ही श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति की वाहिका हैं, एक ही महानदी की सहायक नदियां हैं, एक ही विशाल 'भारत-भारती' परिवार की बहिनें हैं जिनकी प्रतिनिधि बड़ी बहिन का नाम है 'हिंदी'। यह सभी मनीषियों द्वारा पारस्परिक व्यवहार की, आपस में जुड़ने की भाषा के रूप में विकसित होकर एक महान् राष्ट्र भारत की 'राष्ट्रभाषा', राजभाषा, योजक-भाषा, सम्पर्क-भाषा के आसन पर प्रतिष्ठापित है। यह संस्कृत से भी आवश्यकतानुसार सुधरकर परिपुष्ट हुई है। यह सभी प्रकार से सुभाषा कही जाने की अधिकारिणी है।

7.2 हिंदी सुभाषा ही नहीं विश्व की श्रेष्ठतम भाषा भी है। एक विद्वान, डा. जयंती प्रसाद नौटियाल कहते हैं कि संसार में सबसे अधिक समझी जाने वाली भाषा हिंदी है।¹ यह संसार भर में उच्च स्तर तक पढ़ाई जाती है और विश्व भाषा बनने के मार्ग पर अग्रसर है क्योंकि यह जोड़ने वाली भाषा है। श्रेष्ठता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा। इसी एक कारण से हमें अंग्रेजी नहीं, हिंदी अपनाकर गौरवान्वित होना चाहिए। इसका प्रयोग करने में हमें गर्व अनुभव करना चाहिए।

8. तकनीकी काम हिंदी में करना विशेष आसान भी है :

8.1 यहां हिंदी के गुण गिनाना अपेक्षित नहीं है, न किसी अथकचरी अटपटी, अवैज्ञानिक विदेशी भाषा से इसकी तुलना करने की आवश्यकता है। हमें यह भी नहीं गिनाना कि किन-किन सरकारी, गैर-सरकारी, प्रयासों से यह श्रेष्ठता मिली है। हमें केवल वे उदात्त सिद्धांत बताने हैं जिनके आधार पर यह सरल, सुबोध और सर्वग्राह्य फिर भी वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के गम्भीर और क्लिष्ट विचार तक व्यक्त करने में सक्षम बनी है। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का स्वरूप इस प्रकार है :

- क. अंतरराष्ट्रीय शब्दावली ज्यों-की-त्यों रखी गई है; उसका केवल देवनागरीकरण किया गया है।
- ख. अखिल भारतीय पर्याय संस्कृत धातुओं के आधार पर निश्चित किए गए हैं, ताकि वे सभी भारतीय भाषाओं में प्रयोग किए जा सकें (सभी भारतीय भाषाओं की एक-रूपता परिशिष्ट 'क' में देखिए)।
- ग. कुछ प्रसंगों में संस्कृत पर्याय की अपेक्षा स्थानीय हिंदी शब्द एवं हिंदी में आत्मसात् अन्य भाषाओं के शब्द भी स्वीकार किए गए हैं। ऐसे प्रसंगों में अन्य भाषाओं को अपने भिन्न पर्याय रखने की छूट भी है।

5. संस्कृत से भी सुधरी हुई भाषा है हिन्दी। जैसे—संस्कृत का 'देवर' शब्द जिसका अर्थ है 'पति का भाई (जेठा या छोटा)। महाभारत के बाद भारतीय संस्कृति में आए परिवर्तन के फलस्वरूप जिसमें नियोग के लिए केवल छोटा भाई उपयुक्त समझा जाता है, जेठा वर्ज्य है (तुलना कीजिए: 'अनुज-वधू, भगिनी, सुत-नारी; सुनु शठ कन्या सम ये चारी; इन्हि कुट्टि विलोकइ जोई; ताहि बधे कछु पाप न होई।'—मानस), हिंदी में पति का छोटा भाई ही 'देवर' होता है; बड़ा भाई देवर नहीं 'जेठ' कहलाता है (तुलना कीजिए 'जेठ स्वामि, सेवक लघु-भ्राता')। इसी प्रकार व्याकरण में 'लिंग' और 'वचन' के प्रकरण भी हिंदी में सुधरे हुए हैं।

6. देखिए, भारत-सरकार के राजभाषा-विभाग की पत्रिका 'राजभाषा भारती' अक्टूबर-दिसंबर 1997 अंक का पृष्ठ 40.

8.2 वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का भी उल्लेख कर देना उपयोगी होगा। वे ये हैं :—

- 1 अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली से अर्थ उन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों से हैं जो समय-समय पर वैज्ञानिक संघों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद् की कार्यवाहियों में प्रकाशित किए जाते हैं।
2. जहां तक हो सके हिंदी और भारत की दूसरी प्रमुख भाषाओं की पुस्तकों में अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाएगा।
3. गणित और अन्य विज्ञानों में प्रयोग किए जाने वाले प्रतीक चिह्न और सूत्र बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण कर लिए जाएं अर्थात् रोमन लिपि में लिखे हुए अक्षर और अंक ही हिंदी में प्रयुक्त किए जाएं।
4. वैज्ञानिक शब्दावली कोश तैयार करने में अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों का नागरीकरण किया जाए और उनके मूल रूप रोमन लिपि में कोष्ठक में दिए जाएं। जहां कहीं जरूरी हो, शब्दों का अनुवाद और व्याख्या दी जाए।

8.3 इतनी सारी जानकारी के बाद कोई भी विद्वान अब यह नहीं कह सकता कि हिंदी भाषा में कोई कमी है। जो भी कमियां थी या झिझक के अक्सर थे, सब सरकार ने दूर कर दिए हैं। अब हर तरह के साधारण, जटिल, मोटे, बारीक, सरकारी, निजी, तकनीकी और गैर-तकनीकी सभी कार्य सम्पन्न करने की दृष्टि से हिंदी समर्थ है; फिर भी यह अत्यन्त सरल और सुबोध है, अतः इंजीनियरी शिक्षा में माध्यम के रूप में प्रयोग करने में भी सुविधा है। तकनीकी काम तो हिंदी में और भी अधिक आसान है क्योंकि आधे से अधिक शब्दावली तो अंतर्राष्ट्रीय होने से हिंदी में भी वही है जो आप सब पहले से ही जानते हैं; और स्वभाषा में अभिव्यक्ति किसी भी बुद्धिमान का सहज स्वाभाविक गुण ही होता है, चाहे वह किसी विद्यालय में पढ़ा हो या नहीं। कबीर किसी विद्यालय में नहीं पढ़े थे, किन्तु उनकी वाणी में शोध कार्य होता है और विद्वान उपाधियां प्राप्त करते हैं। राष्ट्र-कवि डॉ. मैथिलीशरण गुप्त भी किसी विद्यालय से दसवीं कक्षा भी उत्तीर्ण नहीं हुए थे।

8.4 अब आप लोग तो विद्वान स्नातक, परास्नातक, अध्यापक, प्राध्यापक हैं और अपने-अपने विषयों के अधिकारी विद्वान भी हैं। अतः तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग करने में सभी पूर्णतया सक्षम और समर्थ हैं और हिंदी आप की स्वभाषा है, तो आप भी स्वभाषा का व्रत लीजिए। अगस्त 1942 में गांधीजी ने हुंकार लगाई थी 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो'; और अंग्रेजों के जाते ही अगस्त 1947 में पत्रकारों से कह दिया 'दुनिया को बता दो, गांधी अंग्रेजी भूल गया'। आप भी स्वभाषा का व्रत लिए हुए गर्व से कह दीजिए, 'मैं अंग्रेजी भूल गया'।

9. कार्यान्वयन सम्बन्धी कुछ संकेत :

9.1 जब कमी भाषा में नहीं है, सरकारी आदेशों-अनुदेशों में नहीं है, केवल प्रयोक्ताओं में इच्छा-शक्ति पहल-शक्ति और आत्म-विश्वास की ही कमी है तो वह तो ऐसी कार्यशालाओं में

अभ्यास करने से ही दूर होगी। तैरना सीखने में पहिले झिझक लगती है। पर पानी में उतरे बिना तैरना आता भी तो नहीं। इसी प्रकार आप हिंदी में काम करने लगे तो आपकी सक्षमता स्वाभिमान और सामर्थ्य अपने आप उसे पूरा कर छोड़ेंगे। आप रुकिए नहीं, यदि कहीं कोई शब्द ऐसा आ पड़े जिसके लिए उपयुक्त हिंदी पर्याय तत्काल नहीं सूझ पड़ता, तो उसके स्थान पर अंग्रेजी शब्द ही नागरी में (अथवा रोमन लिपि में ही) लिखकर काम चलाइए। बहुधा ऐसी मिली-जुली भाषा से काम चल जाएगा। सरकारी आदेशों के अनुसार इस प्रकार की भाषा स्वीकार्य है। पारस्परिक बात-चीत, चर्चा-परिचर्चा, छात्रों को पढ़ाने-समझाने और उनकी पृच्छाओं के उत्तर देने के लिए इतना ही पर्याप्त होगा।

9.2 अनौपचारिक टिप्पण तथा प्रारूप-लेखन के लिए भी प्रायः इससे ही काम चल जाएगा। जहां और अधिक सुधारने की आवश्यकता होगी, उच्चाधिकारी स्वयं सुधार देंगे। या यदि आवश्यकता समझेंगे तो हिंदी शाखा/अनुभाग की सहायता ले लेंगे। हां, काम हाथ में लेकर बैठे न रहें, रुके न रहें, कागज चलता रखें। बाद में कभी मौका निकालकर जब सम्भव हो, उपयुक्त शब्द-कोश देखकर या सहकर्मियों से पूछकर उपयुक्त हिंदी शब्द भी अवश्य मालूम कर लें, और यदि अब भी सम्भव हो तो अपने लिखे हुए को सुधार भी दें।

9.3 बोल-चाल की सरल भाषा से काम चलाएं। फाइलों के काम में जैसा प्रशासनिक कार्यालयों में होता है, ऐसी हिंदी की प्रायः आवश्यकता नहीं होती जिसे साहित्यिक हिंदी कहते हैं। एसी भाषा, जैसी सामान्यतया बोलकर विदेशी भाषा न जानने वाले भारतीय अपना दिन-प्रति-दिन का निजी काम चलाते हैं या परस्पर चर्चा-परिचर्चा करते रहते हैं, बोल-चाल की भाषा कहलाती है। वही काम-चलाऊ भाषा है। वही हिंदी का काम चलाऊ ज्ञान कहकर भारत-सरकार की 'हिंदी-शिक्षण-योजना' के तहत सिखाई जाती है। इसमें अन्य भारतीय भाषाओं के ऐसे शब्द भी, जो सामान्य जन आसानी से समझ सकें, शामिल हो सकते हैं। भारत-सरकार ने सरकारी काम में इसकी अनुमति दे रखी है। आप लोग शिक्षण-कार्य में भी ऐसी भाषा का निःसंकोच प्रयोग कर सकते हैं, और करें भी; झिझकें नहीं। नेहरूजी जब नैनी जेल में थे तब उनके जन्म-दिन पर एक मित्र ने उपहार में दी कुछ पुस्तकें और एक उस्तरा। नेहरूजी ने देखा उस्तरा विदेशी था। उन्होंने मित्र को धन्यवाद देते हुए लिखा, "उस्तरा सुन्दर है, लेकिन लगता है तुमने ध्यान नहीं दिया कि यह ब्रिटेन का बना है। स्वदेशी को ब्रत लेने वाले के पास अब इसका क्या काम?" आप भी बे-झिझक कहें कि 'स्वभाषा का ब्रत लेने वाले के पास अब अंग्रेजी का क्या काम?'

9.4 यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्यिक हिंदी लिखने से, सम्भव है, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसे भाषा का ऊंचे स्तर का ज्ञान नहीं है, समझने में कठिनाई हो। इसलिए पाण्डित्य-प्रदर्शन से सप्रयास बचते हुए सरल हिंदी का ही प्रयोग करना चाहिए। सरल हिंदी ही 'अच्छी हिंदी' है, जो सबके लिए सुबोध हो, क्योंकि भाषा का प्रमुख उद्देश्य ही विचारों का सफल संप्रेषण है। इसलिए यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि आपके लिखे हुए को पढ़ने में या पढ़कर समझने में

किसी को अनावश्यक परेशानी या कठिनाई न हो या वह अर्थ का अनर्थ न कर डाले'। दूसरे को समझने में सुविधा रहेगी तो वह यह नहीं समझेगा कि कोई अन्य भाषा उस पर लादी जा रही है। भारत-सरकार के भी उद्देश्य हैं, आदेश हैं, अनुदेश हैं कि हिंदी किसी पर लादी न जाए, प्रेम-पूर्वक समझा-बुझाकर कार्यान्वित की जाए। अंग्रेजी बुरी नहीं है; भारतीयों के अपने काम में उसका प्रयोग करना ही अनुचित है।

सी-154, लोक विहार, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

7. जैसे: संविधान में सर्व-सम्मति से हिन्दी राजभाषा स्वीकृत हुई थी। इसमें 'सर्व-सम्मति से' के स्थान पर 'एकमत होकर' लिख देने से भाषा की दृष्टि से कोई गलती नहीं है; किन्तु अर्थ का अनर्थ कर देने की कला में प्रवीण (देखिए पैरा 4.2) अंग्रेजी-भक्तों ने भ्रष्ट अनुवाद करके इसे 'by one vote majority' अर्थात् 'एक वोट के बहुमत से करके' प्रचारित कर दिया। दुर्भाग्य से अंग्रेजी पाठ ही व्यवहार में सर्व प्रमाणिक माना जाता है, दफ्तरों और न्यायालयों में भी।

राष्ट्रीय एकता के शिल्पकार-सरदार पटेल

—नोतन लाल

एक बार छोटे से एक बालक को फोड़ा निकल आया। उसकी चीर-फाड़ करने के लिए नाई बुलाया गया। उसने कहा कि फोड़े को गर्म लोहे से दागना होगा। बालक इसके लिए तैयार हो गया। लोहे की सलाख खूब गर्म हो गई। बालक आराम से बैठ गया। लेकिन वह नाई दागते हुए झिझकने लगा। उसने इतने छोटे बच्चे को इससे पहले कभी गर्म लोहे से नहीं दागा था। बालक ने कहा 'दाग दो, कुछ नहीं होगा।' लेकिन वह हिम्मत न कर सका। बालक ने देखा-सलाख टण्डी हो रही है। उसने जल्दी से सलाख अपने हाथ में ली और फोड़े पर दाग दी। सारा मवाद निकल गया। तब कहीं चैन पड़ा। इसी निडर साहसी बालक को आगे चलकर दुनिया ने सरदार बल्लभभाई पटेल के नाम से जाना।

बल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर सन् 1875 ई. में गुजरात के खेड़ा जनपद के करमसद गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम झबेर भाई पटेल और मां का नाम लाडबाई था। झबेर भाई एक गरीब किसान थे। वे अपने देश और उसकी आजादी को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते थे। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में झबेर सिंह ने बड़े उत्साह के साथ सक्रिय भाग लिया और बुन्देलों से मिलकर काफी समय तक अंग्रेजी के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी। सरदार के बड़े भाई बिट्ठल भाई भी एक प्रसिद्ध देशभक्त थे। वे भारतीय विधान परिषद के सदस्य भी थे। बल्लभभाई की प्राथमिक शिक्षा करमसद में हुई। बाद में वे पेतलाड की एक पाठशाला में पढ़े। दो वर्ष पश्चात् नडिया हाई स्कूल में भरती हुए। हाई स्कूल परीक्षा पास करने के पश्चात् इनका विचार उच्च शिक्षा प्राप्त करने का था परन्तु घर की आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण ऐसा सम्भव न हो सका। अंतः मुख्तारी की परीक्षा सम्मान सहित सफल होने के पश्चात् ये सन् 1900 में वकालत करने लगे। अपनी कार्य कुशलता एवं वाकपटुता के कारण शीघ्र ही इस क्षेत्र में बल्लभभाई पटेल ने काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी। सन् 1910 में बल्लभभाई बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत गए थे। तीन वर्ष के पश्चात् वे बैरिस्टर एवं लॉ की परीक्षा में सर्व-प्रथम आए। भारत लौटने पर ये बम्बई में प्रैक्टिस करने लगे। शक्तिशाली एवं बलिष्ठ शरीर कठोर मुख-मुद्रा, शत्रु के प्रति ललकार से परिपूर्ण आंखें, सीने में तूफान को भी मातकर देने वाली शक्ति, भुजाओं में उत्साह की फड़फड़ाहट, अंग-प्रत्यंग में अपूर्व साहसी जैसी विलक्षण प्रतिभा के कारण ही बल्लभभाई पटेल से सरदार बल्लभभाई पटेल हो गए।

1920 में जब कांग्रेस पार्टी ने असहयोग का प्रस्ताव पारित किया और यह निर्णय लिया गया कि विदेशी सरकार के साथ किसी भी रूप में शामिल न किया जाए, तब राष्ट्र भक्ति की भावना से प्रेरित होकर पटेल ने हजारों रुपए मासिक आय देने वाली वकालत छोड़ दी थी। उन्होंने

भारतीय जनता का आह्वान किया था कि वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ने न भेजें। आपने भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षण संस्था के रूप में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की और इस संस्था के लिये लाखों रुपए जुटाकर इसका निर्माण किया। सन् 1923 में ब्रिटिश सरकार ने नागपुर में आदेश जारी किया कि सरकारी अधिकारियों के निवास क्षेत्रों में सड़कों पर तिरंगा लेकर कोई न गुजरे। जनता ने इस आदेश की अवहेलना करने का निश्चय किया। नेतृत्व के लिए जनता ने पटेल को आमंत्रित किया। देश के विभिन्न भागों से सत्याग्रही नागपुर पहुंचे। यह आन्दोलन साढ़े तीन महीने चला अन्त में सरकार को अपना आदेश वापस लेना पड़ा। पटेल के आक्रामक शब्दों से अंग्रेज सरकार क्रुद्ध थी। सन् 1930 में उन्हें दो बार जेल भेजा गया।

सरदार पटेल सबसे अधिक प्रसिद्ध बारदोली सत्याग्रह से हुए। इस ऐतिहासिक सत्याग्रह की अप्रत्याशित सफलता ने उन्हें न केवल गुजरात में बल्कि सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्धी दिलवाई। सरकार ने बारदोली के किसानों का लगान बढ़ा दिया था। 100 रुपए की जगह एक सौ तीस रुपए वसूल करने चाहे। किसानों की हालत पहले ही खराब थी। इस नए कानून ने तो उनकी कमर ही तोड़ दी। किसान इकट्ठे होकर पटेल के पास आए और उन्हें अपनी विपदा सुनाई। पटेल ने इस कानून के खिलाफ आवाज उठाई। पटेल ने लोगों से कहा—‘अगर तुम लोग बलिदान दे सकते हो, विदेशी सरकार का सामना अपने प्राणों की बाजी लगाकर कर सकते हो तो मैं तुम्हारे साथ हूँ।’ किसानों ने उन्हें यकीन दिलाया कि ये उनके एक इशारे पर जान भी देने को तैयार हैं। खजाने में लगान जमा होने से रुक गया। सरकार बौखला गई। किसानों पर तरह-तरह के जुल्म हुए, उन्हें मारा पीटा गया, बहुत से किसानों को जेल में दूस दिया गया। लेकिन कोई टस से मस न हुआ। सरदार लोगों को ढाढस बंधाते रहे और जुटे रहने को कहा। उन्होंने किसानों को समझाया कि — ‘किसान किसी भी दूसरे व्यक्ति के समक्ष अपना हाथ नहीं फैलाएंगे। आप मेरे हैं फिर डर किसका? और यदि आवश्यकता पड़े तो अपने प्राणों की बाजी लगाने से भी मत चूकिये।’ उनकी इन्हीं प्रेरणा पर बारदोली में सत्याग्रह का बिगुल बज गया। सरकार के भीषण अत्याचारों एवं बर्बरता के फलस्वरूप भी सत्याग्रह 6 मास निरन्तर ही चलता रहा। आखिर सरकार नरम पड़ी। किसानों का लगान कम किया गया और उन्हें जेल से छोड़ दिया। इनके ही सफल प्रयासों से गुजरात में खददर और चरखा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

सरदार पटेल कराची में सन् 1931 में हुए राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। अपने अध्यक्षीय भाषण में पटेल ने अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में कहा था ‘स्वराज्य हमारा लक्ष्य है, इस लक्ष्य में किंचित भी संशोधन नहीं हो सकता’ इससे अंग्रेजी सरकार और भी चिढ़ गई। उन्हें जेल भेज दिया गया। सन् 1934 ई. में आप रिहा किए गए। सन् 1942 में कांग्रेस ने नारा दिया ‘अंग्रेजो भारत छोड़ो’। अंग्रेज सरकार ने सरदार पटेल सहित सभी प्रमुख नेताओं को जेल की सीखचों में बन्द कर दिया। पटेल जेल में ही बीमार हो गए। सरकार ने उनके डाक्टर को भी उनकी स्वास्थ्य परीक्षा नहीं करने दी। तीन वर्ष बाद घोर यातनाएं सहने के पश्चात् सभी नेता रिहा कर दिए गए।

15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। पंडित जवाहर लाल नेहरू जी स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री बने तथा सरदार पटेल उप-प्रधानमंत्री। उन्हें मंत्रिमंडल में गृह, सूचना और प्रसारण मंत्रालय सौंपे गए। उस समय देश से अंग्रेज चले गए थे, लेकिन देश की हालत नाजुक थी। उस समय भारत में छोटी-बड़ी 584 रियासतें थीं। कुछ महाराजा तथा राजा देशभक्त थे किन्तु अधिकांश धन और विलासता में मदहोश थे। वे अंग्रेजों के भारत छोड़ने के पश्चात निरंकुश शासक बनने का सपना देख रहे थे। सरदार बल्लभभाई पटेल ने देश को बांधने का काम अपने हाथ में लिया। राष्ट्रीय एकता के लिए वे अनेक नवाबों और शासकों से मिले। सरदार ने उन्हें संगठन और एकता का लाभ बताया। कुछ लोग राजी हो गए और कुछ अपनी जिद पर अड़ गए। ऐसों को सरदार ने आड़े-हाथों लिया। स्वाधीनता दिवस के पूर्व ही शासकों को पटेल ने चेतावनी दी थी कि 'यदि 15 अगस्त के पूर्व आप हमारा साथ नहीं देते, तो बाद की स्थिति अलग होगी। भारतीय संघ में जो नहीं मिलेगा उसे नुकसान होगा और आज जो आपको सुविधाएं उपलब्ध हैं उनको समाप्त कर दिया जाएगा।' इसका परिणाम यह हुआ कि कई देश भक्त शासकों ने अपने राज्यों को भारतीय संघ राज्य में विलीन कर दिया। सभी तिरंगे झण्डे के नीचे आकर एक हार के मोती बन गए। सरदार का यह काम युगों तक याद किया जाएगा। रियासतों के एकीकरण के विषय में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि 'इतिहासकार अब पिछली बातों पर दृष्टि डालेंगे तो वे निःसन्देह यह समझेंगे कि सरदार पटेल द्वारा समस्त रियासतों का एकीकरण कार्य भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है'।

सरदार बल्लभभाई पटेल की संयम, शीलता और कर्तव्य परायणता का ज्वलंत उदाहरण उस समय मिलता है जब एक बार ये किसी फौजदारी के मुकदमें की पैरवी कर रहे थे, तभी किसी व्यक्ति ने उन्हें टेलीग्राम लाकर दिया। सरदार पटेल ने पढ़कर चुपचाप जेब में रख लिया और पुनः मुकदमे की पैरवी में व्यस्त हो गए। मुकदमें की समाप्ति पर जब उनके शुभचिन्तकों ने उस टेलीग्राम के विषय में सरदार पटेल से प्रश्न किया तो वे अत्यन्त गम्भीर स्वर में बोले 'इसमें मेरी पत्नी की मृत्यु की सूचना थी।' उनके एक मित्र ने कहा कि आपको मुकदमा बीच में ही रोक देना चाहिए था। उस पर सरदार पटेल ने कहा कि 'व्यक्ति को कर्म के समक्ष कदापि नहीं झुकना चाहिए। जिसे मरना था वह तो मर ही गया। क्या मेरे मुकदमे को बीच में रोक देने से उसमें प्राण वापस आ सकते थे।' सरदार पटेल के इस आत्मविश्वास से परिपूर्ण तर्क को सुनकर शुभचिन्तक उनका लोहा मान गए। निश्चय ही वे लौह पुरूष कहलाने योग्य थे। 5 दिसम्बर 1950 में वे इस संसार वे विदा हो गए।

सरदार पटेल द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्यों को भुला पाना असम्भव है। राष्ट्रीय एकता के इस कर्मठ शिल्पकार और अनुशासन के प्रतीक व्यक्तित्व का देश की वर्तमान संकटमय स्थिति में उनका आदरपूर्वक स्मरण करना हमारा परम कर्तव्य है। भारतीय इतिहास में यह लौह पुरूष सदैव उज्ज्वल नक्षत्र की भांति प्रकाशमान रहेगा क्योंकि :—

'यूँ तो जीने के लिए लोग जिन्दा रहते हैं,
लोभ जीवन का नहीं फिर भी जी लिया करते हैं।
मृत्यु से पहले भी करते हैं हजारों लेकिन,
जिन्दगी उनकी है जो मर के जिया करते हैं।'

—सेवानिवृत्त लेक्चरर, डी-1209, डब्लुआ कालोनी, फरीदाबाद 121001

आवश्यक सूचना

राजभाषा भारती के स्वर्ण जयंती विशेषांक में प्रकाशनार्थ विभिन्न विधाओं पर लेख आमंत्रित करने के लिए दिए गए विज्ञापन के संदर्भ में लेखकों और विद्वानों से बहुत बड़ी संख्या में लेख विभाग में प्राप्त हुए थे। खेद है कि स्थानाभाव और अन्य कारणों की वजह से सभी लेख पत्रिका में प्रकाशित नहीं किए जा सके। ऐसे सभी लेखकों, जिनका लेख पत्रिका में प्रकाशित नहीं हो सका, अपना सहयोग प्रदान करने के लिए विभाग उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता है और यह आशा करता है कि भविष्य में भी वे यथावत् अपना सहयोग और योगदान प्रदान करते रहेंगे।

आदमी जंगलों को मिटाता जा रहा है

— 'दिलचस्प'

पर्यावरण अर्थात् स्वच्छ वातावरण। पर्यावरण का कोई शाब्दिक अर्थ नहीं है मगर भावार्थ रूप में कहा जा सकता है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त वह स्वच्छता जो वृक्षों, नदियों, झरनों, पहाड़ों, नैसर्गिक सौन्दर्यों, शुद्ध हवाओं, यानी अंतरिक्ष व पृथ्वी सहित समस्त वातावरण प्रदूषण रहित हो, वही पर्यावरण है जिसकी समस्त विश्व, मानव जाति एवं प्राणियों को आवश्यकता है।

आज से दो दशकों पूर्व किसी ने गम्भीरतापूर्वक इस विषय पर विचारा नहीं, न विश्व स्तर पर इसका व्यापक प्रचार था और न ही आज जैसी विकट परिस्थितियां थीं। पर्यावरण बनाए रखने के लिए सर्वाधिक आवश्यकता है हरियाली की और हरियाली प्राप्त होती है पेड़-पौधों से। पेड़-पौधे वातावरण और प्रकृति को प्रभावित करते हैं, बादलों को आकर्षित करते हैं। हरियाली आंखों व मन को राहत देती है, सुकून प्रदान करती है। पेड़ों से छाया, फल, मेवा, लकड़ी, शुद्ध हवा प्राप्त होती है। बादलों से गुणकारी पानी प्राप्त होता है जो हवा की तरह जीवन प्रदान करता है। सम्पूर्णता में कहा जा सकता है कि हरियाली, पेड़, बादल आदि एक-दूसरे के पूरक हैं और यह पूरकता पर्यावरण में परिवर्तित होती हुई प्राणी जाति की पौषक है।

पर्यावरण की प्रथम आवश्यकता है वृक्षों को संरक्षण देने और नए वृक्षारोपण या बीजारोपण करने की। इस दिशा में काफी प्रयास भी हुए हैं। हमारा भारत राष्ट्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। वृक्षारोपण के लिए समय-समय पर प्रयास और प्रचार तो हुआ है मगर इसमें एक दुर्भाग्य सम्मिलित हो गया है। हमारा प्रयास दिखावा में ढलकर केवल उपदेश और भाषण में सिमट आया है। अवसर विशेष पर वृक्षारोपण अभियान या कार्यक्रम सम्पन्न होता है तब जमावड़ा लगाता है, पत्रकार और प्रेस फोटोग्राफर इकट्ठे होते हैं। कैमरे से चमक निकलती है। अखबारों में फोटो छपती है। यह फोटो देखते ही वृक्षारोपण अभियान की असलियत समझ में आ जाती है। नेता, मंत्री, समाजसेवी, वृक्ष प्रेमी (?) आदि का शरीर मिट्टी में सनना तो दूर, कपड़ों में सलवटें तक नहीं होतीं, अभियान समूह का चेहरा कैमरे की ओर होता है। वृक्षारोपण का यह चित्र स्पष्ट रूप से अहसास करा रहा होता है कि फलां ने वृक्षारोपण किया है अथवा वृक्षारोपण का अहसास किया है? इस अभियान के पश्चात् वृक्ष या वृक्षों अथवा पौध की सुरक्षा के लिए उन पर एक लम्बा जालीदार पिंजरा रख दिया जाता है। एक या दो सप्ताह में ही समुचित सम्भाल और सींचन अभाव में वृक्ष या पौधा मुरझा जाता है। पिंजरा किसी के हत्थे चढ़कर रद्दी के भाव बिक जाता है और एक 'फ्राड' वृक्षारोपण का उदय होता है?

प्रचार से परे का पर्यावरण सच में अभिमान देता है और उसकी बदौलत ही जितने वृक्ष हैं वे सुरक्षित रखे जा सके हैं। सम्मान के पात्र हैं वे दूरदर्शी जिन्होंने वृक्षों की पूजा करने, उनसे मनौतियां मांगने, उन्हें चेतन करार करने जैसे श्रेष्ठ आयाम दिए। उनकी बदौलत ही श्रद्धा के कारण आज भी हम वृक्षों और उनके पर्यावरण से लाभान्वित हो रहे हैं अन्यथा मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं, भौतिक आवश्यकताओं एवं व्यावसायिकता के कारण न केवल इन वृक्षों का दोहन किया है, अपितु इनका नामो-निशां यहां तक कि इनका अस्तित्व मिटाने पर उतारू हो गया है ? विश्वोई समाज और सुन्दर लाल बहुगुणा जैसे वृक्ष प्रेमी और पर्यावरणविज्ञ ने पेड़ों को बचाने की अलख जगाई, 'चिपको' आन्दोलन शुरू किया जिसमें जानी मानी हस्तियां, यथा—मेधा पाटकर, बाबा आमटे, शबाना आजमी, अरुंधतिराय, सिद्धराज दुद्धा, ठाकुर दास बंगा, स्वामी अग्निवेश, मेनका गांधी, संजय मंगो, बल्लू गांगुली, श्रीलता स्वामीनाथन, एस. आर. हिरेमट इत्यादि सम्मिलित हो गए।

उक्त हस्तियों के अथक प्रयासों के पश्चात् भी पेड़ों की कटाई अति चिंता का विषय है। स्वच्छ हवा, जल, तन्दुरुस्ती, अनेकों प्रकार की जड़ी-बूटियों एवं प्रकृति प्रदत्त अन्य उपयोगिताओं से वंचित होना पड़ रहा है, महज वृक्षों के अभाव से। वृक्षों से लदे-फदे-ढके, जंगल ही नहीं, पहाड़ तक भी आज नंगे होते जा रहे हैं अथवा यों कहें कि इन दुर्गम स्थानों में भी पहुंच कर मानव अपने स्वार्थों के लिए इन स्थलों को वृक्ष विहीन करता जा रहा है।

विश्व प्रसिद्ध चैरापूंजी (भारत) जहां विश्व की सर्वाधिक बरसात हुआ करती थी, वृक्ष कटाव से स्थिति बिल्कुल बदल गई है और वहां पर्याप्त वर्षा का अभाव हो गया है। मानव ने अपने स्वार्थों के लिए जंगल के जंगल साफ कर दिए हैं। दुर्गम स्थानों, उत्तुंग चोटियों, घाटियों, पहाड़ों तक को साफ कर दिया है। क्रम जारी है।

विकास के नाम पर पेड़ों की कटाई का दौर न केवल चैरापूंजी तक, अपितु अन्य पहाड़ी स्थलों और वनों तक आ पहुंचा है। आदमी जंगलों को मिटाता जा रहा है और खुद जंगली बन रहा है। आदमी पहाड़ों को काटकर खुद कठोर बन गया है। आदमी समुद्र लांघ गया लेकिन उसकी गहराई तक नहीं जा पाया। आकाश में उड़ गया मगर उसकी तटस्था ग्रहण न कर सका। हां, समुद्र सा खारा, आकाश सा शून्य और मरुस्थल सा शुष्क अवश्य बन गया है।

पर्यावरण को सर्वाधिक नुकसान पहुंचाया है बढ़ती आबादी ने, और इसी वजह से ही पेड़ों की अंधाधुंध कटाई का दौर शुरू हो गया। बढ़ती आबादी व पेड़ कटाई के पश्चात् युद्ध, आणविक परीक्षण, वाहनों एवं बड़ी बड़ी मिलों की चिमनियों का धुआं, बड़े बांधों का निर्माण, जीव वध, पटाखे, चूड़ी उद्योग, शोर, कूड़ा, कचरा, गंदगी आदि ने पर्यावरण को प्रदूषित किया है, नुकसान पहुंचाया है।

बढ़ती आबादी ने तो विस्फोटक रूप ले लिया है। बढ़ती आबादी की वजह से आवास व्यवस्था में जगह की समस्या आड़े आती है जिसकी पूर्ति के लिए वृक्षों एवं वनों का सफाया हो

रहा है, कृषि भूमि समाप्त हो रही है। इसी अनुरूप खाद्यान्न एवं जल की कमी हो रही है। बढ़ती आबादी से ही मल-मूत्र एवं अन्य सहायक क्रियाओं से गंदगी, कीचड़, शोर आदि से पर्यावरण के लिए एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है। इस संकट से उबरना नितांत आवश्यक हो गया है। इसके फैलाव से न तो पर्यावरण बरकरार रह सकेगा और न ही मानव जाति सुखी, संतुष्ट और स्वस्थ रह सकेगी ?

दिलचस्प की है यही पुकार
पेड़ पौधों की लगे कतार।

पर्यावरण को पंगु बनाने में विकसित देशों की दादागिरी बनाम युद्ध भी जिम्मेदार रहे हैं जिसकी धौंस पर जब चाहे जिस राष्ट्र पर बमों से हमले का दौर दौरा शुरू हो जाता है। मानव संहार, औद्योगिक प्रतिष्ठान, भवन, मकान आदि की क्षति होने के साथ ही ओजोन पर्त प्रभावित होती है एवं विश्व भर का वातावरण प्रदूषित होता है, वर्षा का अभाव होता है तथा बीमारियां फैलती हैं। युद्ध जैसी स्थिति न भी बने तो आणविक परीक्षण के नाम पर यह प्रदूषण जारी रहता है।

बमों जैसी स्थिति ही पटाखों एवं आतिशबाजी की है जिनसे शोर प्रदूषण के साथ ही विषैले धुएं से जमीनी वातावरण को दूषित करने के साथ ही जहरीला और रोगाणु बनाता है, दुर्घटनाएं होती हैं वे अलग से। 'बचपन बचाओ' आन्दोलन, वर्ल्ड-फैमिली व अन्य जागरूक संस्थाएं इसकी रोक थाम के लिए सक्रिय भी हुईं मगर बढ़ती स्पर्धा एवं भौतिकवाद इनकी सक्रियता को नकारता हुआ तथा होली-दीवाली के अवसर पर पटाखे चलाने की परम्परा लांघता हुआ, शादी, उत्सव, चुनाव में विजय, क्रिकेट में विजय, मंत्रिमण्डल का गठन, जन्म दिवस, नव वर्ष पूर्व की अर्द्धरात्रि आदि अवसरों पर दिखावे एवं वैभवता के प्रदर्शन रूप में पटाखों और आतिशबाजी का दौर उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। स्थिति 'वैधानिक चेतावनी' मार्का हो गई है। सरकार, शराब और धूम्रपान निषेध की तरह पटाखा निषेध की भी अपील करती है, गुटखा तथा धूम्रपान के सेवन पर "स्वास्थ्य के लिए हानिकारक" वैधानिक चेतावनी के विज्ञापन देती है, दूसरी ओर इनके उत्पादों पर छूट देती है, ठेकों की नीलामी लगाती है और भारी टेक्स वूसलती है, "..... बहादुरी पुरस्कार" में शरीक होती है।

खुश होते चलाकर, बम बारूद पटाखे
फुस्स होते दिलचस्प पर्यावरण मिटाके।

वर्तमान में पर्यावरण विज्ञों का सारा ध्यान बड़े-बड़े बांधों का निर्माण को रुकवाने में लगा है। देश की प्रगति और विकास के नाम पर बड़े-बड़े बांधों का निर्माण किया जा रहा है। सुनने में यह बात बड़ी अच्छी लगती है, मगर इस विकास में अप्रत्यक्ष में विनाश भी छुपा हुआ है। भाखड़ा जैसे बांध अपवाद कहे जा सकते हैं। बांधों के निर्माण से न जाने कितने आबाद व्यक्तियों को खानाबदोश बनाया जाता है। जाने कितने वृक्षों की कटाई होती है ? बांधों के निर्माण में लाखों लोग

बेघर हो जाते हैं, उनके खेत, मकान पानी में डूब जाते हैं ? इन बांधों के निर्माण से न केवल काफी बड़ा भू भाग व्यर्थ चला जाता है वरन् ये बाढ़ भूकम्प और महामारी का कारण बनते हैं ?

वर्तमान में मेधा पाटकर की अगुआई में पर्यावरण विज्ञों का आन्दोलन नर्मदा पर बनने वाले बांधों को लेकर है। नर्मदा घाटी परियोजना जो 1300 कि. मी. लम्बी है, इससे लगभग 2 करोड़ 50 लाख लोगों का जीवन प्रभावित होगा।

केन्द्रीय भू जल आयोग के अनुसार 3 हजार 600 बांध जो बड़े बांधों की श्रेणी में आते हैं। जिनमें 3 हजार 300 बांधों का निर्माण स्वतंत्रता के बाद हुआ, 1 हजार बांधों पर निर्माण कार्य चल रहा है। तब भी भारत की कुल जनसंख्या (एक अरब) का पांचवा भाग पेय जल से वंचित है तथा दो-तिहाई ऐसा होता है जिसके पास शौचालय जैसी मूलभूत सुविधा भी नहीं है ?

“इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन” के द्वारा किए गए 54 बड़े बांधों के विस्तृत अध्ययन के अनुसार एक बड़े बांध से औसतन 44 हजार 182 लोग विस्थापित हो जाते हैं। इस हिसाब से यदि 3300 बांधों की गणना की जाए तो गत 50 (पचास) वर्षों में करोड़ों लोगों को इन बांधों के कारण बेघर होना पड़ा है। अकेले ‘सरदार सरोवर बांध’ से 576 प्रतिशत आदिवासी विस्थापित हुए हैं।

तात्पर्य यह है कि 20 प्रतिशत लोगों को सुख, सुविधा और सम्पन्नता देने में 80 प्रतिशत लोगों पर इसका विपरीत असर होता है, साथ ही पर्यावरण को क्षति पहुंचती है, वह अलग से ?

इन दो दशकों में विश्व के अनेक देशों का ध्यान पर्यावरण बनाए रखने पर केन्द्रित हुआ है। इसी को लेकर कुछ वर्ष पूर्व “रियो दी जनेरिया” में विश्व स्तर पर पर्यावरण को बचाए रखने पर बैठक हुई जिसमें अनेक देशों ने भाग लिया। यह बड़ी अच्छी शुरुआत थी। मगर विश्व भर के लोगों का ध्यानाकर्षित करने के लिए कई बिन्दु ऐसे रहे हैं जो महज प्रचार और दिखावा बन कर रह गए हैं तथापि वे अटपटे हैं एवं समस्या निवारण में अनुपयुक्त भी। जैसे कि इथोपिया की भूख मिटाने अथवा पर्यावरण बनाए रखने के लिए “दौड़” आयोजन करना ?

दौड़ से इथोपिया की भूखमरी समाप्त हुई कि नहीं, कहा नहीं जा सकता, मगर पर्यावरण बचाए और बनाए रखने के लिए की गई दौड़ से उड़ने वाली गर्दों-गुबार से पर्यावरण अवश्य प्रदूषित हुआ ? यही स्थिति मानव श्रृंखला बनाने की है ? दौड़ या मानव श्रृंखला अथवा जुलूस आदि की तुलना भूखमरी या अन्य समस्या निराकरण से करना गलत और अप्रासंगिक है। इन क्रियाओं से क्षणिक ध्यानाकर्षण करने के अलावा धरातल की उपलब्धि नहीं कहीं जा सकती ?

घुमा-फिरा-दौड़ा कर अन्ततः यही कहा जा सकता है कि स्वच्छता, वृक्षों की सुरक्षा और प्रदूषण रहित सामाजिक परिवेश ही सही मायने में पर्यावरण को संरक्षण देने वाले आयाम हैं जो प्राणी मात्र के लिए हर दृष्टि से लाभदायक और सुकून देने वाले उपाय कहे जा सकते हैं।

दिलचस्प पर्यावरण का ख्याल रहेगा

प्राणी जगत सदा खुशहाल रहेगा।